

# साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष- 1, खंड- 3, अंक- 3, मार्च- 2024



## प्रधान संपादक



डॉ. संतोष कांबळे

M.A. (History, Hindi), M.Lib. & I.Sc., M.Phil., PGDCA., PGDLAN., PGDT., UGC-NET, Ph.D.-LIS., (Ph.D.-Hindi)

पुस्तकालयाध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

E-Mail- [shreyashju@yahoo.co.in](mailto:shreyashju@yahoo.co.in) Mobile No.- 8125981194

## संपादक



डॉ. अजित चुनिलाल चव्हाण

M.A., Ph.D.

सहयोगी प्राध्यापक, वसंतराव नाईक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, शहादा, जिला- नंदुरबार

E-Mail- [chavan.ajit2@gmail.com](mailto:chavan.ajit2@gmail.com) Mobile No.- 9422262445

## सह-संपादक



प्रो. गौतम भाईदास कुवर

M.A., Ph.D

हिंदी विभाग प्रमुख

पूज्य साने गुरुजी विद्या प्रसारक मंडल का कला, विज्ञान एवं वाणिज्य

महाविद्यालय शहादा जिला नंदुरबार महाराष्ट्र

E-Mail- [gautamkuwar53@gmail.com](mailto:gautamkuwar53@gmail.com) Mobile No.- 84118 28448



प्रो. सुनील गुलाब पानपाटील

M.A., Ph.D ( SET)

कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महिला महाविद्यालय, नंदुरबार

E-Mail- [sgpanpatil@gmail.com](mailto:sgpanpatil@gmail.com) Mobile No.- 9860235508

## कानूनी सलाहकार



एडवोकेट श्री राजेश कुमार शर्मा

B.A., LL.B

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय, नई दिल्ली, E-Mail- [rajesh.shagun@gmail.com](mailto:rajesh.shagun@gmail.com) Mobile No.- 981144676

# साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष- 1, खंड- 3, अंक- 3, मार्च- 2024

प्रधान संपादक

डॉ. संतोष कांबळे

पुस्तकालयाध्यक्ष,

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

संपादक

डॉ. अजित चुनिलाल चव्हाण

सहयोगी प्राध्यापक,

वसंतराव नाईक कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय,

शहादा, जिला- नंदुरबार

सह-संपादक

प्रो. गौतम भाईदास कुवर

सह-संपादक

प्रो. सुनील गुलाब पानपाटील

कानूनी सलाहकार

एडवोकेट श्री राजेश कुमार शर्मा

अधिवक्ता, सर्वोच्च न्यायालय, नई दिल्ली

परामर्श मंडल

प्रो. अर्जुन चव्हाण

भूतपूर्व विभागाध्यक्ष (हिंदी)

शिवाजी विश्वविद्यालय,

कोल्हापुर

प्रो. सुनिल बाबुराव कुलकर्णी

निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय,

नई दिल्ली

एवं

निदेशक,

केंद्रीय हिंदी संस्थान, आगरा

प्रो. एस.वी.एस.एस. नारायण राजू

आचार्य एवं विभागाध्यक्ष (हिंदी)

तमिलनाडु केंद्रीय विश्वविद्यालय,

तिरुवारूर

डॉ. गंगाधर वानोडे

क्षेत्रीय निदेशक,

केंद्रीय हिंदी संस्थान,

आगरा,

(हैदराबाद केंद्र)

एम. नधीरा शिवंति

हिंदी अध्यापिका,

स्वामी विवेकानंद

सांस्कृतिक केंद्र,

कोलंबो, श्रीलंका

# साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष- 1, खंड- 2, अंक- 2, फरवरी- 2024

## EDITORIAL BOARD

डॉ. अर्चना पत्की, सेलू	डॉ. लूनेश कुमार वर्मा, छछानपैरी, छत्तीसगढ़	डॉ. मिनाक्षी सोनवणे, नागपुर	डॉ. राजश्री लक्ष्मण तावरे, भूम, (महाराष्ट्र)	डॉ. मल्लिकार्जुन एन. उजीरे, (कर्नाटक)
डॉ. राहुल कुमार, झारखंड	डॉ. संदीप किर्दत, सातारा	डॉ. वनिता शर्मा, दिल्ली	डॉ. भावना कुमारी, रांची	डॉ. एकलारे चंद्रकांत, मुखेड, महाराष्ट्र
डॉ. अनामिका जैन, मुजफ्फरनगर	डॉ. मौसम कुमार ठाकुर, गोड्डा, झारखंड	डॉ. रौबी, अलीगढ़	डॉ. अमृत लाल जीनगर, पिण्डवाड़ा (राजस्थान)	डॉ. प्रकाश आठवले ऊरुण इस्लामपुर,
डॉ. राम आशीष तिवारी, छत्तीसगढ़	डॉ. दीपक प्रसाद, रांची	डॉ. रामप्रवेश त्रिपाठी, देवरिया,	डॉ. परशुराम मालगे, मंगलुरु, (कर्नाटक)	डॉ. कृष्ण कुमार शर्मा, बुलंदशहर
डॉ. विजय वाघ, सेनगाँव, (महाराष्ट्र)	डॉ. रेणुका चव्हाण, नासिक (महाराष्ट्र)	डॉ. लक्ष्मण कदम, मुदखेड (महाराष्ट्र)	डॉ. ज्ञानेन्द्र कुमार, पटना	डॉ. पवार सीताबाई नामदेव इंदापुर
डॉ. टी. लता मंगेश, तिरुपति	डॉ. आशीष कुमार तिवारी, छतरपुर (मध्य प्रदेश)	डॉ. राम सिंह सैन, राजस्थान,	डॉ. गोरखनाथ किर्दत, उरुण-इस्लामपुर	डॉ. वैशाली सुनील शिंदे, सातारा

## PEER REVIEW COMMITTEE

डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता, गंगापुर सिटी	डॉ. संजीव कुमार, दरौली, सिवान	डॉ. सचिन जाधव, सिंदखेडा	डॉ. के शक्तिराज, यल्लारेड्डी, तेलंगाणा	डॉ. सुरेन्द्र कुमार, रतिया
डॉ. शीतल बियाणी, वाळूज	डॉ. नीलम धारीवाल, उत्तराखंड	डॉ. नीतू रानी, पंजाब	डॉ. सरोज पाटिल, बेतुल, म.प्र.	डॉ. सुनिल पाटिल, चेन्नई
अर्जुन कांबले, बेलगावी, कर्नाटक	ममता शत्रुघ्न माली, मुंबई	डॉ. देविदास जाधव, अर्जापूर, महाराष्ट्र	डॉ. सोनकांबले अरुण वाई,	सुषमा माधवराव नरांजे, भंडारा (महाराष्ट्र)
डॉ. श्रीलेखा के. एन., केरल	अजीति महेश्वर मिश्रा, मुंबई, (महाराष्ट्र)	वंदना शुक्ला, छतरपुर (मध्य प्रदेश)	प्रा. तेलसंग हनमंत भिमराव (महाराष्ट्र)	डॉ. मंगल कोंडिबा ससाणे, बारामती (महाराष्ट्र)

स्वामित्व

: प्रधान संपादक, साहित्याकाश मासिक पत्रिका

प्रकाशक

: प्रमिला प्रकाशन, हैदराबाद

डॉ. संतोष कांबळे

पुस्तकालयाध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, खैरताबाद, हैदराबाद

E-mail- [sahityaakash24@gmail.com](mailto:sahityaakash24@gmail.com)

Website- <https://www.sahityaakash.in>

\* 'साहित्याकाश' में प्रकाशित रचनाकारों के विचार स्वयं उनके हैं। अतः संपादक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

\*\* 'साहित्याकाश' पत्रिका से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल हैदराबाद न्यायालय के अधीन होंगे।

## साहित्याकाश

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERRED MONTHLY JOURNAL

वर्ष- 1, खंड- 3, अंक- 3, मार्च- 2024

## अनुक्रम

अ.क्र.	विवरण	लेखक का नाम	पृ.सं.
1.	संपादकीय- नारी शक्ति	डॉ. संतोष कांबळे	02-02
<b>आलेख</b>			
2.	नयी सदी के हिंदी उपन्यासों में किसानों का संघर्ष और आत्महत्याएँ	डॉ. जयश्री भास्कर वाडेकर	03-07
3.	'हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श' (यमदीप और जिंदगी 50 -50 उपन्यासों के संदर्भ में)	समाधान शिवाजी नागणे	08-11
4.	स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी की भूमिका	समीना नायकवडी (कुरेशी)	12-17
5.	स्वतंत्रता आंदोलन में शहीद भगतसिंह का योगदान	पूजा काशीनाथ मुद्दे	18-20
6.	परंपरा से भिन्न तुलसी का काव्यादर्श	डॉ. सुमित्रा कोतपल्ली	21-23
7.	गुरुमति साहित्य में कबीर और अन्य कवियों का योगदान	गौरव यादव	24-29
8.	21 वीं सदी के नए विमर्श में वृद्ध विमर्श	डॉ. रेखा	30-34
9.	कहानी 'उसने कहा था' में कथित प्रेम तत्व की संदिग्धता	डॉ. सम्राट सुधा	35-38
10.	केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में सामाजिक यथार्थबोध	डॉ. एस. सूर्यावती	39-43
11.	हिंदी उपन्यासों में चित्रित नयी सदी की समस्याएँ'	बोनोड पांडुरंग पोषट्टी	44-47
12.	हिंदी साहित्य में आधुनिक विमर्श की उपादेयता	डॉ. शेख बेनज़ीर	48-50
<b>कविता</b>			
13.	हे अधोहस्ताक्षरी	डॉ. नीरज कुमार द्विवेदी	51-52
14.	तकरार न कर	समृद्धि संजय सुर्वे	53-53
15.	जीवन की विडंबना	राजेंद्र यादव 'फरीदाबादी'	54-54
16.	एक ख्वाब किनारों पर	अंकिता राय	55-55

## संपादकीय

## नारी शक्ति

जीवविज्ञान की दृष्टि से मनुष्य का नर और नारी के रूप में जन्म होता है। अपवादात्मक स्थिती या शारीरिक व्यंग्य के रूप में तृतीय लिंगी व्यक्ति का जन्म होता है। शारीरिक दृष्टि से नर और नारी में अनेक तरह के व्यत्यास होते हैं। इन व्यत्यासों को ही ढाल बनाकर नर ने नारी को कमजोर बनाने की भरसक कोशिश की है इसमें कोई संदेह नहीं है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो नारी के लिए देवी का स्थान सिर्फ धर्म ग्रंथों में ही देखने को मिलता है। बल्कि वास्तविकता कुछ और ही है। भारतीय पुरुषसत्तात्मक समाज में पुरुष ने महिलाओं को पर हमेशा अपना अधिकार आरोपित किया है। जिसके लिए उसने महिलाओं को अनेकानेक बंधनों में बाँधकर उसे कमजोर बनाने की कोशिश की है। महिलाओं ने नर के इन बंधनों को कभी स्वीकार किया तो कभी इनका विरोध कर इन बंधन से मुक्त हो अपने अस्तित्व निर्माण करने की भरसक कोशिश की। वर्तमान स्थिति को ध्यान में रखकर देखा जाए तो महिलाओं को अस्तित्व निर्माण की इस जंग में बहुत हद तक सफलता भी प्राप्त हुई।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य पर दृष्टि डाले तो राजमाता जिजाऊ ने सामाजिक रूढ़ीवादी बंधनों को तोड़ते हुए पति की मृत्यु होने पर सती न होकर अपना जीवन अपने पुत्र छत्रपति शिवाजी महाराज की शिक्षा-दिक्षा हेतु समर्पित कर स्वतंत्र हिंदू साम्राज्य के निर्माण में अहम भूमिका निभाई। इसमें कोई संदेह नहीं कि छत्रपति शिवाजी महाराज के वीरता परक यशस्वी जीवन यापन में वीरमाता जिजाऊ का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

स्त्री शिक्षा की यदि बात की जाए तो सावित्री बाई फुले का योगदान अविस्मरणीय है। सावित्री बाई फुले ने तत्कालीन परिस्थिती में अछूतों और महिलाओं को सक्षम बनाने हेतु शिक्षा को माध्यम बनाया तथा अपने पति महात्मा जोतिबा फुले की मदद से पुणे शहर में प्रथम महिला पाठशाला शुरू की और जहाँ से महिला शिक्षा के द्वार महिलाओं के लिए सदा के लिए खूल गये।

आधुनिक युग में महिलाएँ पुरुषों के कंधे से कंधा मिला कर चल रही हैं। ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है जहाँ महिलाओं ने पुरुषों के साथ अपनी भागीदारी न निभाई हो भले ही वह क्षेत्र विज्ञान और प्रौद्योगिकी, खेल जगत, साहित्य जगत, राजनीतिक जगत अथवा उद्योग जगत ही क्यों न हो। सभी क्षेत्रों में महिलाओं ने अपना अहम योगदान प्रदान किया।

हिंदी साहित्य में मीराबाई, महादेवी वर्मा, कृष्णा सोबती, नासीरा शर्मा, अलका सरावगी, कात्यायनी, मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, अमृता प्रीतम आदि लेखिकाओं ने साहित्य रचना कर अपनी एक अलग पहचान बनाई। महिला दिवस (08 मार्च) के शुभ अवसर पर 'साहित्याकाश' परिवार महिला शक्ति को नमन करते हुए यह अंक विश्व की प्रत्येक महिला को समर्पित करता है।

प्रधान संपादक

डॉ. संतोष कांबळे

## नयी सदी के हिंदी उपन्यासों में किसानों का संघर्ष और आत्महत्याएँ

डॉ. जयश्री भास्कर वाडेकर,  
श्रीमती दानकुंवर महिला महाविद्यालय,  
जालना 431203 (महाराष्ट्र)  
ई-मेल: dr.jbwadekar@gmail.com  
भ्रमणध्वनी : 9923839174, 9405530579

### सार :

किसानों के संघर्ष किसी भी समाज की अद्वितीयता और उसकी अद्वितीयता का हिस्सा हैं। इसके अलावा, नयी सदी के उपन्यासों में किसानों के संघर्ष उनकी सामाजिक, आर्थिक, और राजनीतिक स्थितियों को भी दर्शाते हैं और इसे उनके जीवन की अद्वितीयता का हिस्सा बनाते हैं। आजादी के पहले शोषकों को किसान समझ सकता था। लेकिन आज उसका चालाकी से शोषण किया जा रहा है। इससे शोषकों को पहचानना भी मुश्किल हुआ है। किसानों की दुर्दशा के लिए जिम्मेदार तत्व और किसान आत्महत्याओं की जमीनी सच्चाई नई सदी के इन उपन्यासों में यथार्थ रूप में प्रकट हुई है।

**बीज शब्द :** मौसम के साथ जुआ, औद्योगिक क्रांति, ऋण, संघर्षों की त्रिवेणी आदि।

### प्रस्तावना :

धरती और किसान का अटूट रिश्ता है, वह अपनी जमीन से सर्वाधिक लगाव रखता वही उसका सब कुछ है। दरअसल कृषक समाजों के लिए कृषि कोई धंधा नहीं बल्कि उनकी जीवन शैली है। भारत कृषि प्रधान देश माना जाता है। आज भी सत्तर फीसदी लोग ने जीवन यापन के लिए कृषि को आधार बनाया है। समय की मांग के अनुसार कृषि के उत्पादन में परिवर्तन होना लाजमी है। इंग्लैंड से भारत तक का औद्योगिक क्रांति का सफर और भारत में हरित क्रांति होने से कृषि उत्पादन में काफी बदलाव आया है परन्तु किसान किसी न किसी रूप से शोषित और प्रताड़ित रहा है। भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार कृषि और किसान है। किसानों की उन्नति से ही देश की उन्नति संभव है। किसान पूरे देश का अन्नदाता है। वैश्वीकरण के दौर में उसकी भी स्थिति में सुधार होगा ऐसा लगा था। लेकिन आज के बाजारवादी दौर में वह हाशिए पर चला गया है। हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओं किसान जीवन की विधिक छवियों का प्रमाणिक अंकन समय-समय पर हुआ है। प्रेमचंद ने अपने रचनाओं के माध्यम से किसान को साहित्य में एक मुकम्मल जगह प्रदान की। उन्होंने किसान जीवन को बहुत करीब से देखा और फिर उसको अपने लेखन का केन्द्र बनाया। प्रेमचंद के पश्चात् ग्रामीण जीवन पर बहुत लेखकों ने उपन्यास और कहानियां लिखी जो उल्लेखनीय रही हैं। साथ ही हिन्दी कविता में भी किसान जीवन की विविध छवियां अंकित हैं। किसानों का संघर्ष एक व्यापक विषय है जो भारतीय समाज में गहरे रूप से अपेक्षित है।

आजादी के इतने साल बीत जाने पर भी किसानों को न्याय नहीं मिल पा रहा है। वह समस्याओं के मकड़ जाल में घिरा हुआ है। कभी प्राकृतिक आपदाएं तो कभी सरकारी नीतियों से वह परेशान हो रहा है। उसकी फसल को उचित मूल्य न मिलना भी आज एक गंभीर समस्या हो चुकी है। अच्छे बीजों की उपलब्धता और वितरण की असमानता की समस्या ने भी किसानों का जीना मुश्किल किया है। किसानों के लिए सारे हालात ऐसे हैं कि "जिंदा कैसे रहा जाए?" इस स्थिति में वह फांसी के फंदे को

अपनाकर आत्महत्या कर रहा है। अब तक तीन लाख से अधिक किसानों ने आत्महत्याएं की हैं। किसान आत्महत्या आज चिंता का विषय बना है और वह भी विशेषकर कृषि प्रधान देश में।

#### आत्महत्या के कारण:

1. आर्थिक संघर्ष: बजट की कमी, किसानों के लिए अधिकांश बजट में कमी होती है, जिससे उन्हें उचित मूल्य मिलने में मुश्किल होती है। ऋण की बढ़ती ब्याज दरें: ऋण लेने के लिए ब्याज दरें बढ़ गई हैं, जिससे किसानों को उचित लाभ नहीं मिल पा रहा है।
2. तकनीकी संघर्ष: बुनियादी तकनीक की कमी: किसानों के पास अधिकांश बुनियादी तकनीक नहीं है, जिससे वे अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं।
3. अभाव और अद्यतन तकनीक: अधिकांश किसान अद्यतन तकनीक के अभाव में हैं, जिससे उन्हें अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं।
4. भूमि संघर्ष: किसानों के पास अधिकांश भूमि नहीं है, जिससे वे अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं।
5. शिक्षा और जागरूकता: अधिकांश किसान शिक्षित नहीं हैं, जिससे उन्हें अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं।
6. राजनीतिक संघर्ष: अधिकार की कमी: किसानों के पास अधिकांश अधिकार नहीं हैं, जिससे वे अधिक उत्पादन नहीं कर पा रहे हैं।

किसान प्रत्येक युग में शोषणकारी व्यवस्था के लिए 'नरम चारा' रहा है। कभी वह सामन्ती शक्तियों के क्रूर शोषण का शिकार बना तो कभी साम्राज्यवादी ताकतों ने अपने पोषण के लिए उसे आहार बनाया। पूँजीवादी सभ्यता उसे बेघर करने की जिद पाले बैठी है। खेत-खलिहान उजाड़े जा रहे हैं। ऊपर से प्रकृति की निर्मम मार ने उसे असहाय बना दिया है। हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद भी अधपेट सोना और छोटी-छोटी खुशियों के लिए तरसते रहना उसकी नियति सी बन गई है। उसका जीवन अभावों की भेंट चढ़ता हुआ दुख की महागाथा बन जाता है। हृदयहीन व्यवस्था उसे निरन्तर निगलती जा रही है। ऊपर से शान्त दिखने वाली नदी की तरह जिसकी भँवरें भीतर-ही-भीतर मनुष्य को दबाकर तलहटी में लगा देती हैं और दूसरों को वह तभी दिखाई देता है जब उसकी लाश उतराती हुई बहने लगती है।

किसान जीवन पर केन्द्रित शिवमूर्ति का 'आखिरी छलांग' उपन्यास है। जो प्रेमचंद की परंपरा की ही एक कड़ी दिखती है। 'आखिरी छलांग' उपन्यास का कथानक परस्पर उलझी हुई किसान जीवन की अनेक समस्याओं का जंजाल है। कथानक का आधार पूर्वी उत्तर प्रदेश का ग्रामांचल है। इसका नायक पहलवान एक किसान है। उसके सामने विरासत में मिली तथा नयी विकास नीतियों के कारण निर्मित अनेक समस्याएँ हैं। वह अपनी सायानी बेटे के लिए दो साल से वर खोज रहा है, बेटे की इंजीनियरिंग की फीस का जुगाड़ नहीं हो रहा है, तीन साल से गन्ने का बकाया नहीं मिल रहा है, सोसायटी से खाद के लिए लिया गया कर्ज चुकता नहीं हुआ है। हर दूसरे महीने में ट्यूबवेल के बिल की तलवार सिर पर लटक जाती है। ऐसी कई समस्याओं को पहलवान किसान के माध्यम से उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में उठाया है। शिवमूर्ति ग्रामीण रचनाकार हैं। उन्होंने किसानों की समस्याओं को समझा तथा उनकी समस्याओं को महसूस किया है। पहलवान महसूस करता है कि जैसे नहर के पेट भीतर सिल्ट भर जाती है उसी तरह किसान की तकदीर में भी साल दर साल सिल्ट भरती जा रही है। अपनी किसान जीवन की समस्याओं से तंग आकर वह इस व्यवस्था से प्रश्न करता है कि "सरे हालत तो मर जाने के हैं। जिंदा कैसे रहा जाए।"<sup>1</sup> आज लेखन के क्षेत्र में किसान धीरे-धीरे गायब होता जा रहा है। ऐसे भीषण समय में प्रेमचंद आज भी हमारे लिए प्रासंगिक और समकालीन है क्योंकि न किसानों और जमीन की समस्या हल हुई है न भूमिहीन मजदूरों को श्रम शोषण से मुक्ति मिली है, बल्कि उसमें स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों और अल्प संख्यकों के नये आयाम और जुड़ गए। प्रेमचंद की संवेदना, सरोकार और दृष्टि ही उनकी परम्परा है। जिसे हम आज जल,



जमीन और जंगल के असमान वितरण के संघर्ष के रूप में देख रहे हैं। उपन्यासकार संजीव ने अपने उपन्यास 'फांस' में किसान जीवन की विभिन्न समस्याओं को उजागर किया है। उन्होंने किसानों की मूलभूत समस्या खाद, पानी, बीज, बिजली की समस्या, प्राकृतिक समस्या, फसल का उचित मूल्य न मिलने की समस्या, कर्ज की समस्या तथा आत्महत्या के कारणों को बड़े ही बेबाकी के साथ अपने उपन्यास में दिखाया है। उपन्यासकार ने कर्ज की समस्या को अपने उपन्यास में इस तरह व्यक्त किया है- "अगले महीने बैंक का २५ हजार का कर्ज अदा करना है। आज गुढ़ी पाडवा है-मराठी नववर्ष। ... "फर्स्ट क्लास डिनर है आई।" ... "ये जो भात है न आई, इसमें स्टार्च है, इसका माड न फेंको तो चावल की सारी ताकत बची रहती है, फिर मावा ! मेवा है मेवा ! ताकत ही ताकत ! मजबूती ही मजबूती !" ... "इसके सामने नासिक का किसमिश फेल, रत्नगिरि का हापुस फेल और कलमी के साग में आयरन ही आयरन। और स्वाद?... शुभा सामने आकर खड़ी हो गयीं तो झेप गया पूरा परिवार ! शुभा ने तरस खाती जुबान से कहा -"आज नववर्ष है। आज तो कुछ कायदे की चीज बना लेती ! चलो मैं देती पूरण पोली !" नहीं वहिणी कोई तो दिन आएगा, हम भी पूरण पोली और ढेर सारा पकवान बनाएँगे। आज रहने दो। " "मगर क्यों ?" वो सुनील काका ने कहा है न कि जब तक कर्ज न उतार लो....।"समझी। अरे तुम मियां - बीवी ! तुम्हें तपस्या करनी हो, शौक से करो, मगर मुलगियों को तो बख्श दो।"<sup>2</sup> किसानों की समस्याएं औपनिवेशिक शासन की शोषणपरक व्यवस्था से जुड़ी हुई हैं जो प्रमुख रूप से जमींदारों के अत्याचार, लगान, इजाफा, बेदखली, बेगारी के रूप में सामने आती है (प्रेमचंद: प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, गोदान)आजादी के तुरन्त बाद जमींदारी प्रथा के अंत की तथाकथित घोषणा और जमींदारों के जोड़-तोड़, तीन-तिकड़म से अपनी ठसक को कायम रखने की प्रयास दिखाई देता है,जिसके शिकार अन्ततः किसान-मजदूर ही होते हैं. (नागार्जुन:बलचनमा, बाबा बटेसरनाथ). सत्तर के दशक में हरित क्रांति के लाभ और उसके बंटवारे के सवाल जैसे-बड़े किसान बनाम छोटे किसान, किसान बनाम खेत-मजदूर, क्षेत्रीय असन्तुलन जैसे मुद्दों ने किसान समस्याओं को जटिल और गतिशील बना दिया।किसान जीवन को ही केंद्र में रखकर पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास की रचना की है।अकाल में उत्सव' में किसान जीवन की छोटी- छोटी समस्याओं को भी कथाकार ने जगह दी है। किसानों की मूलभूत समस्या के.सी.सी. समस्या, प्राकृतिक समस्या तथा सरकारी मुआवजा जैसी समस्याओं को कथाकार ने बड़े ही गहराई के साथ चित्रित किया है। किसानों की फसल नष्ट होने पर मुआवजा न मिलने की समस्या को सुबीर जी ने अपने उपन्यास में बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है - "लेकिन सर किसान तो सरकार के ही भरोसे हैं न ? अगर सरकार उसको मदद नहीं करेगी तो कौन करेगा ? खेतों में खड़ी फसल अगर बरबाद हो गई, तो किसान क्या करे, क्या मर जाए ?" आगे सरकारी अफसरों के माध्यम से किसानों के प्रति सरकार का धिनौना चेहरा भी इस उपन्यास में प्रस्तुत होता दिखाई पड़ता है-"तो मर जाए ? सरकार के भरोसे बैठा है क्या ? दुनिया में सब अपने-अपने भरोसे बैठे हैं। आपको किसने कहा है खेती करो ? मत करो अगर नुकसान का इतना ही डर है तो। जब कहा ही जाता है कि खेती तो मौसम के भरोसे खेला जाने वाला जुआ है, तो क्यों खेलते हो इस जुए को? किसी ने कहा है क्या आपसे? मत करो खेती कोई दूसरा काम करो।"<sup>3</sup>

देश की अर्थव्यवस्था के विकास में किसानों का अहम योगदान है। आज किसानों की उत्पादन क्षमता बहुत बढ़ गयी है। लेकिन सरकार उनके फसलों को उचित समर्थन मूल्य नहीं बल्कि न्यूनतम समर्थन मूल्य दे रही है। फसल नुकसान होने पर पुख्ता सरकारी प्रावधान नहीं है। फसल बीमा का लाभ केवल कुछ बड़े किसान ही ले पा रहे हैं। लघु और सीमांत किसान के लिए सरकार की कोई योजना नहीं है। जबकि आकड़ों के अनुसार- "भारत में 60 करोड़ अनुमानित किसान हैं जिसमें से 80% किसान छोटे किसान हैं, शेष 20% बड़े किसान हैं।...किसान क्रेडिट कार्ड कर्ज में फसाने का एक तरीका है। किसान कर्ज में डूबना नहीं चाहता लेकिन सरकार उसे कर्ज देकर डूबा रही है। फिक्की (एफ.सी.सी.आई.) और एसोचेम ठेके पर खेती कराने में लगे हुए हैं।"<sup>4</sup> रणेंद्र का 'गायब होता देश' दरअसल विकास के नाम पर आदिवासी किसानों को लूटने और उन्हें जबरन विस्थापित करते जाने का करुण

आख्यान है जो धीरे-धीरे हाशिए पर होते हुए लुप्त होने की कगार पर हैं। मुख्य धारा में इसको लेकर कोई विशेष हलचल या विक्षोभ नहीं दिखता है पर इन सबके खिलाफ आदिवासी अपने जीवन की सबसे कठिन लड़ाई लड़ रहे हैं। विकास की कीमत वे अकेले ही कब तक चुकाएंगे जबकि उनका अस्तित्व ही खतरे में है इसलिए आदिवासियों का संकल्प अटल है कि 'जान देगे पर जमीन नहीं देगे'।

उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्यिक विधा है। इसके युग जीवन सापेक्ष स्वरूप तथा निरन्तर बढ़ती हुई लोकप्रियता को देखते हुए इसे आधुनिक साहित्य की केन्द्रीय विधा भी कहा जा सकता है। आज का समय तीव्रता, गति, परिवर्तन तथा अस्थिरता का है। उपन्यास अशान्त और अस्थिर युग की उपज है, जहाँ लोगों के साथ कुछ न कुछ घटनाएं घटती रहती हैं और लोग परिवर्तित होते रहते हैं। अतः इस अस्थिर और गतिशील युग में निरन्तर परिवर्तित होते हुए मनुष्य की कथा कहने तथा उसकी बदली हुई मानसिकता को अभिव्यक्ति देने के लिए उपन्यास विधा सर्वाधिक उपयुक्त विधा के रूप में स्थापित हुई है। यूरोप में उपन्यास का जन्म भले ही मध्यवर्गीय जीवन की महागाथा के रूप में हुआ हो लेकिन भारतीय उपन्यासों विशेष कर हिंदी पट्टी के लेखकों ने किसान जीवन और स्त्री दुखों को अपने उपन्यासों की विषय वस्तु बनाया। प्रेमचंद ऐसे किसान-केन्द्रित उपन्यासों की श्रृंखला के पहले और सशक्त लेखक हैं जो आगे चलकर नागार्जुन, रेणु, भैरव प्रसाद गुप्त, मार्केन्डेय, विवेकी राय से होती हुई रामदेव शुक्ल, मिथिलेश्वर, रामदरश मिश्र, शिव प्रसाद सिंह, जगदीश चंद्र, संजीव और पंकज सुबीर तक विस्तार पाती है। इनके उपन्यासों में किसान संघर्ष के कई शोड्स हैं क्योंकि न किसानों की जमीन की समस्या हल हुई, न भूमिहीन मजदूरों को श्रम-शोषण से मुक्ति मिली, बल्कि उसमें स्त्रियों, दलितों, आदिवासियों और अल्पसंख्यकों के नए आयाम और जुड़ गये। कर्ज में फंसे किसानों की आत्महत्याएँ, विकास के नाम पर हृदयहीन विस्थापन, रोजगार के लिए होरी की सन्ततियों का शहरों में पलायन, कृषक महिलाओं का शोषण, आदिवासियों पर निर्मम अत्याचार, मिलों-फैक्टोरियों और कोयले की खानों में खतते किसान-पुत्रों की व्यथा-कथा और शोषण तथा इसके खिलाफ पनपते आक्रोश और संघर्ष की चेतना से इनके उपन्यास महत्वपूर्ण हो गये हैं।

किसान प्रत्येक युग में शोषणकारी व्यवस्था के लिए 'नरम चारा' रहा है। कभी वह सामन्ती शक्तियों के क्रूर शोषण का शिकार बना तो कभी साम्राज्यवादी ताकतों ने अपने शोषण के लिए उसे आहार बनाया। पूँजीवादी सभ्यता उसे बेघर करने की जिद पाले बैठी है। खेत-खलिहान उजाड़े जा रहे हैं, ऊपर से प्रकृति की निर्मम मार ने उसे असहाय बना दिया है। हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद भी अधपेटे सोना और छोटी-छोटी खुशियों के लिए तरसते रहना उसकी नियति सी बन गई है। उसका जीवन अभावों की भेंट चढ़ता हुआ दुख की महागाथा बन जाता है। हृदयहीन व्यवस्था उसे निरन्तर निगलती जा रही है। ऊपर से शान्त दिखने वाली नदी की तरह जिसकी भँवरें भीतर-ही-भीतर मनुष्य को दबाकर तलहटी में लगा देती हैं और दूसरों को वह तभी दिखाई देता है जब उसकी लाश उतराती हुई बहने लगती है।

#### निष्कर्ष:

नयी सदी के उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य यह है कि वे समाज को उनके संघर्षों और आत्महत्याओं के बारे में जागरूक करें और उन्हें समाज की ध्यान में लाएं। इन उपन्यासों में किसानों के जीवन की वास्तविकता, उनके संघर्षों की गहराई और उनके आत्महत्या के कारणों को विस्तार से प्रस्तुत किया गया है। इन उपन्यासों के माध्यम से किसानों के संघर्षों और आत्महत्याओं की वास्तविकता को समझाने का प्रयास किया गया है ताकि समाज को इस बारे में जागरूक किया जा सके। सत्तर के दशक में हरित क्रांति के लाभ और उसके बंटवारे के सवाल जैसे-बड़े किसान बनाम छोटे किसान, किसान बनाम खेत-मजदूर, क्षेत्रीय असन्तुलन जैसे मुद्दों ने किसान समस्याओं को जटिल और गतिशील बना दिया। पंचायती राज्य व्यवस्था ने सत्ता के विकेन्द्रीकरण के साथ-साथ किसानों-दुनिया में सत्ता के प्रतीकों में भी मूलभूत परिवर्तन किया। यह वह दौर है जब लगान, बेदखली, बेगारी जैसे मुद्दे या

तो समाप्त हो गये अथवा हाशिए पर आ गये। मंडल-कमंडल के दो किनारों के बीच बहती भारतीय राजनीति ने गांवों में एक नई सुगबुगाहट जरूर पैदा की जिसने जातीय पहचान को और पुख्ता किया। दलितों और पिछड़ों की सत्ता में बढ़ती भागीदारी ने सामन्ती तत्वों को चुनौती देना प्रारम्भ किया। ये ग्राम केन्द्रित उपन्यासों में व्यक्त संघर्ष के नये आयाम हैं। नई आर्थिक नीति, मल्टी नेशनल कंपनियों के खेल, भूमि अधिग्रहण, कर्ज का बढ़ता दुष्चक्र, उत्पाद का उचित मूल्य न मिल पाना और किसानों की बढ़ती आत्महत्याओं ने एक बार फिर उपन्यासकारों का चलने देगें, न खुद इसमें काम करेगें, न औरों को करने देगें। 'की अनुगूँज इस संघर्ष की व्यापकता का प्रमाण है।

#### संदर्भ सूची:

- 1) शिवमूर्ति- आखरी छलांग, पृष्ठ सं.- 79
- 2). संजीव- 'फांस' पृष्ठ सं. - 61-62
- 3). पंकज सुबीर- अकाल में उत्सव, पृष्ठ सं.-170
- 4) अखिल अखिलेश- मीडिया वेश्या या दलाल, हलकान किसान, पृष्ठ-288-289

# ‘हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श’ (यमदीप और जिंदगी 50 -50 उपन्यासों के संदर्भ में)

समाधान शिवाजी नागणे

शोध छात्र

कर्मवीर भाऊराव पाटील महाविद्यालय, पंढरपुर

दूरभाष - 9975753381

ई मेल - snagane06@gmail.com

## सारांश:

विश्व के सभी समाजों में किन्नरों का भी एक वर्ग है—जिसे थर्ड जेंडर, हिजड़ा, तृतीय लिंगी, उभयलिंगी, यूनक, खोजवा, मौगा, छक्का, पावैया, खुसरा, जनखा, अनरावनी, शिखण्डी, ख्वाजासरा आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। आज हम 21 वीं शती के मशीनी युग में जी रहे हैं जहाँ हर काम बटन दबाने से ही चुटकियों में संपन्न हो जाते हैं। मगर मन व मस्तिष्क आज भी दकियानूसी विचारों की संकीर्णता की बेड़ियों में जकड़े हुये हैं। किन्नर समुदाय की स्थिति अत्यन्त दयनीय है, उनकी झोली में असीम पीड़ा है, जिससे हमारा समाज कोसों दूर है। संसद में पेश हुए विधेयक के जरिये किन्नरों के अधिकारों के संरक्षण के लिए केन्द्रीय कैबिनेट ने ‘ट्रांसजेंडर पर्सन’ बिल 2016 को मंजूरी दे दी।

हिन्दी साहित्य में ‘किन्नर विमर्श’ अभी अपरिपक्व अवस्था में सामाजिक, शारीरिक, मानसिक भेद शोषण के दौर में से गुजर रहा है। किन्नर समाज को स्वयं अपने प्रति संवेदनशील होने की भी आवश्यकता है। किन्नर समाज के बच्चों को सामान्य बच्चों के समान वातावरण प्रदान करना समाज की जिम्मेदारी है ताकि किन्नर समाज का आर्थिक, राजनीतिक व सामाजिक दृष्टि से उत्थान संभव हो सके।

**बीज शब्द:** हिजड़ा, शैक्षिक सशक्तिकरण, शारीरिक भेद, यमदीप, बुनियादी हक, असरदार पैरवी, जिंदगी, संवेदनशीलता।

## उद्देश्य:

- 1) किन्नर समुदाय का यथार्थ समाज के सामने लाना।
- 2) किन्नर समुदाय के दुःख एवं दर्द को चित्रित करना।
- 3) समाज और परिवार का किन्नरों के प्रति देखने का रवैया दिखाना।

## प्रस्तावना :

साहित्य और समाज का घनिष्ठ संबंध होता है। इसलिए साहित्यकार समाज में जो कुछ घटित होता है, उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में साहित्यकार करता है। वस्तुतः समाज में जो कुछ भी व्याप्त है, वह साहित्यकार की संवेदना और चिंतन का विषय होता है। जिसकी अभिव्यक्ति साहित्य में कर साहित्यकार समाज में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है। आज विश्व धरातल पर मानव अधिकारों की चर्चा ने आंदोलन का रूप धारण कर लिया है। हाशिए के समाज को मुख्यधारा में लाने की कोशिशें हो रही हैं। जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्याक विमर्श, किसान विमर्श आदि। समाज के कई उपेक्षित वर्गों पर समकालीन साहित्य में चिंतन हो रहा है, परंतु समाज बहिष्कृत, लिंग निरपेक्ष ‘किन्नर’ समुदाय के विषय में कोई बड़ी चर्चा नहीं दिख रही है।

ऐसा नहीं कि साहित्य में किन्नर समुदाय पर पहली बार लिखा गया है। इसके पूर्व महाभारत काल में भी शिखंडी नामक ऐसा ही पात्र था, जो किन्नर था। अर्जुन ने भी अपने अज्ञातवास काल में बृहनल्ला का रूप धारण कर लिया था। ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार हिंदू और मुस्लिम राजाओं ने रानियों की पहरेदारी के लिए किन्नरों को रखा था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। किन्नर समुदाय को धर्म ने, पुराणों ने स्वीकारा जिनका इतिहास 4000 साल पुराना है, परंतु आज भी किन्नर समाज की व्यथा से पीड़ित है।

संसार में केवल दो लिंगो स्त्री और पुरुष को मान्यता मिली है। लेकिन इन दोनों के अलावा एक और वर्ग भी समाज में उपस्थित है जिसका नाम किन्नर है। यह वर्ग संसार के सभी समाजों में तिरस्कार और अवेहलना का शिकार बन गया है। समाज में किन्नर समुदाय की स्थिति अत्यंत दयनीय है। जिसका कारण समाज एवं सरकार द्वारा किन्नरों के साथ उपेक्षित व्यवहार किया जाना है।

### किन्नर से तात्पर्य :

किन्नर को हिजड़ा, उभयलिंगी, तृतीयलिंगी, खुसरा, मौसी आदि कई नामों से पहचाना जाता है। किन्नर शब्द हिंदी में दो शब्दों 'कि' और 'नर' से मिलकर बना है, जिसका तात्पर्य हिमाचल की जनजाति से नहीं है, बल्कि उस वर्ग से है, जो रूपेण न स्त्री है न पुरुष। वस्तुतः जिसे जन सामान्य की भाषा में हिजड़ा कहा जाता है। हिजड़ों को परिमार्जित भाषा में किन्नर कहा जाता है।

### विमर्श का अर्थ :

आधुनिक साहित्य में विमर्श की अवधारणा 1960 के बाद दृष्टिगोचर होती है। शब्द प्रयोग की दृष्टि से विमर्श शब्द अत्यंत प्राचीन है। इसका अर्थ है "सोच विचार कर तथ्य या वास्तविकता का पता लगाना, किसी बात या विषय पर कुछ सोचना, समझना, विचार करना, गुण-दोष आदि की आलोचना करना या मीमांसा करना, जांचना, पर, किसी से परामर्श या सलाह करना।"<sup>1</sup> अतः विमर्श शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ विचार - विमर्श, सोचना, समझना, आलोचना करना है।

### हिंदी उपन्यासों में किन्नर विमर्श

साहित्य के क्षेत्र में वर्तमान समय में लिंग निरपेक्ष, समाज बहिष्कृत किन्नर या थर्ड जेंडर समुदाय पर चिंतन और चर्चा तेजी से हो रही है। हिंदी साहित्य में नई सदी के आरंभ से यह विमर्श प्रभावी रूप से दिखाई देता है। इसी कारण नीरजा माधव का 'यमदीप', निर्मला गुराडिया का 'गुलाम मंडी', प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली', महेंद्र भीष्म का 'किन्नर कथा', भगवंत अनमोल का 'जिंदगी 50-50' आदि उपन्यासों में किन्नर जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। किन्नरों पर लिखे गए उपन्यासों में उनकी व्यथा-कथा को चित्रित किया है। हिंदी कथा साहित्य में अभी उतनी मात्रा में किन्नर विमर्श पर उपन्यास नहीं लिखे गए। लेकिन फिर भी हिंदी साहित्य में किन्नर विमर्श पर चर्चा हो रही है।

नीरजा माधव का 'यमदीप' उपन्यास हिंदी का किन्नर समुदाय पर लिखा हुआ पहला उपन्यास माना जाता है। 'यमदीप' उपन्यास में किन्नर समुदाय का रहन-सहन, संताप, अंधविश्वास, उनकी विडंबना, दुख, दर्द, अकेलापन, समाज और परिवार द्वारा उपेक्षा को चित्रित किया है। उपन्यास का पूरा कथानक किन्नर समुदाय के इर्द-गिर्द घूमता है। उपन्यास की नायिका नाजबीबी के माध्यम से भाई द्वारा तिरस्कार, बेटा-बेटी मोह को चित्रित किया है। नाजबीबी इन समस्याओं से लड़ती हुई, अपने अस्तित्व को स्थापित करने का प्रयास करती है। उसके जन्म से ही घरवाले परेशान होते हैं, क्योंकि बच्चा किन्नर है। नाजबीबी पढ़ाई में तेज थी। लेकिन आठवीं कक्षा में पढ़ते समय कुदरत के करिश्मे के कारण उसे अपने पढ़ाई छोड़नी पड़ती है। उसमें स्त्रीयोचित शरीरांग के साथ दाढ़ी, मूछ भी आ जाती है। समाज उसे देखकर हंसी-मजाक करता है।

नाजबीबी की माता उससे बहुत प्यार करती है। उसे अपने पास रखना चाहती हैं, परंतु सभ्य समाज द्वारा उन्हें विवश किया जाता है कि वह बच्चे को किन्नर समुदाय में छोड़ दे। वह उसे पढ़ा-लिखाकर अपने पैरों पर खड़ा करना चाहती थी। किन्नरों को शिक्षा लेना भी नसीब नहीं है, क्योंकि इन्होंने जब भी शिक्षा लेनी चाही उस समय उन्हें अपमानित होना पड़ा है। इसी वास्तविकता को चित्रित करते हुए महताब गुरु कहते हैं कि “माताजी किसी स्कूल में आज तक हिजड़े को पढ़ते-लिखते देखा है। किसी कुर्सी पर हिजड़ा बैठा है, पुलिस में, मास्टरी में, कलेक्टरी में, किसी में भी। अरे इसकी दुनिया यही है, माताजी! कोई आगे नहीं आया कि हिजड़ों को पढ़ाओं, लिखाओं, नौकरी दो जैसे कुछ जातियों के लिए सरकार कर रही है।”<sup>2</sup>

नाजबीबी को किन्नरों की बस्ती में छोड़ा जाता है। किन्नर लोग नाच-गाकर पैसा कमाते हैं। साधारण लोग उनसे दूर रहना पसंद करते हैं, लेकिन वही किन्नर मानवीयता के कारण लोगों की मदद करते हुए दिखाई देते हैं। एक पागल औरत प्रसव पीड़ा में तड़प रही थी तब किन्नर उसकी मदद करते हैं। वही साधारण लोग उसकी मदद नहीं करते। प्रसूति के बाद उस पागल औरत की मृत्यु होती है। तब उसकी बच्ची को कोई अपनाता नहीं तब नाजबीबी कहती है- “अरे हम हिजड़े है, हिजड़े... इंसान है क्या मुंह फेर ले।”<sup>3</sup> नीरजा माधव जी इस उपन्यास के माध्यम से यह बताना चाहती है कि साधारण लोग संवेदनशून्य है। इसके विपरीत किन्नर सभी से हमदर्दी रखते हैं। किन्नर लोग किसी बच्चे को अपने साथ नहीं रख सकते हैं। समाज में सभी को जीने का अधिकार है मात्र किन्नरों को छोड़कर क्योंकि वे समाज से तिरस्कृत है। समाज उनको कोसता है, उन पर हंसी-मजाक करता है। नाजबीबी जब उस बच्ची को स्कूल में भर्ती कराने जाती है तो उन्हें देखकर स्कूल की अध्यापिकाएं और छात्र कानफूसी करते हैं। तब वह कहती है- “जब हम धंधे पर नहीं होते, बहनजी तो इस तरह का मजाक हमारे सीने में गोली की तरह लगता है। हम आसमान से तो नहीं टपकते हैं न? आपकी तरह किसी मां की कोख से जन्में है। हाड-मांस का शरीर लिए। हमें तो अपने आप दुःख होता है इस जीवन पर। आप लोग भी दुःखी कर देते हो।”<sup>4</sup>

समाज किन्नर बच्चे को अपने पास रखना पसंद नहीं करता है। परिवार के जो सदस्य इन्हे अपने पास रखना चाहते हैं, समाज उन्हें भी मजबूर कर देता है कि उस बच्चे को किन्नर समाज को सौंप दें। यदि परिवार के लोग उसे पढ़ना भी चाहे या अन्य बच्चे की तरह उसकी परवरिश भी करना चाहे फिर भी समाज में बेइज्जती की डर से उस बच्चे को अपने से अलग कर देते हैं। समाज की असंवेदनशीलता का चित्रण महताब गुरु के माध्यम से किया है।

महताब गुरु कहते हैं “आप इस बस्ती में रह नहीं सकते बाबूजी और आपकी अपनी बेटा को अपने साथ रख नहीं सकते... दुनिया में बदनामी और हंसी हंसारात के डर से। हिजड़ी के बाप कहलाना न आप बर्दाश्त कर पाएंगे और न आपके परिवार के लोग। लूली, लंगड़ी होती यह, कानी कोतरी होती, तो भी आप ही से अपने साथ रख सकते थे, इसलिए इसे अब इसके हाल पर ही छोड़ दीजिए। यही इसका भाग्य था, यही बदा।”<sup>5</sup> महताब गुरु के माध्यम से वास्तविकता को चित्रित किया गया है।

किन्नर समाज अस्पष्ट जेंडर और यौनिक पहचान के कारण अपने नागरिक अधिकारों से वंचित रहा है। लेकिन आज संविधानिक सुधार की वजह से किन्नरों को राजनीतिक क्षेत्र में अधिकार मिल गए हैं। समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण से तंग आकर किन्नर राजनीति में भाग लेकर समाज में सुधार लाना चाहते हैं। नाजबीबी कहती है- “जरूरत पड़ी तो भ्रष्ट लोगों के खिलाफ हथियार भी उठाऊंगी। हर गंदगी को जड़ से साफ कर दूंगी। दुनिया में शांति रहे और क्या चाहिए किसी को?”<sup>6</sup> इस प्रकार किन्नर सिर्फ ताली बजाना नहीं चाहता, तो समाज में सुख-शांति रहे इसलिए वह कुछ भी करने को तैयार है।

भगवत अनमोल ‘जिंदगी 50-50’ उपन्यास किन्नर जीवन का यथार्थ चित्रण करता है। उपन्यास का नायक अनमोल का भाई हर्षा और बेटा सूर्या दोनों किन्नर है। हर्षा के किन्नर होने के कारण पिता द्वारा मारपीट और उपेक्षा मिलती है। घर और परिवार से वह प्रताड़ित होता रहता है। वह जैसे-जैसे बड़ा होता है समाज में उसका जीना और भी मुश्किल हो जाता है। घर से लेकर

बाहर तक उसका मजाक उड़ाया जाता है। उसके स्कूल की अध्यापिका भी उसका मजाक उड़ाते हुए कक्षा में शैतानी कर रहे बच्चों से कहती हैं—“अगर किसी ने बदमाशी की तो उसे हर्षा के पास बैठा दूंगी।”<sup>7</sup> अपने प्रति किए जा रहे हैं व्यवहार को समझ पाना हर्षा के लिए कठिन हो जाता है। वह जैसे-जैसे बड़ा होता है, वैसे वैसे उसके पूरे शरीर में स्त्री मन की भावनाएं बलवती हो जाती हैं। वह अपनी माँ की साड़ी पहनता है और श्रृंगार भी करता है। एक दिन लड़की के वेश में सजी संवरी हर्षा को उसके बाबूजी देखते हैं और उसे पीटते हुए कहते हैं—“तुझे ज्यादा शौक है लौंडिया बनने का! छोड़ आएंगे हिजड़ों के पास, तो यहां वहां-वहां छुछुआत भीख मांगता फिरेगा।”<sup>8</sup>

समाज किन्नरों को हमेशा बुरी नजर से देखता है। जब किन्नर हर्षा पर बलात्कार होता है तब उसकी भावात्मक वेदना इस प्रकार अभिव्यक्त हुई है—“किन्नर होना अधूरापन ही तो है न? कैसे-कैसे पल आते। इस शरीर में सब भुगता, सब सहा जिस शरीर का लोग मजाक उड़ाते हैं, उसे ही रात को अपने मन बहलाने का जरिया बना लेते हैं। अच्छा है इन लोगों से दूर अपना एक समुदाय हैं।”<sup>9</sup> समाज की किन्नर लोगों के प्रति सोच अच्छी न होने के कारण अपना अलग समुदाय बनाने के लिए किन्नर विवश होते हैं।

इस उपन्यास में हर्षा तथा हर्षिता के माध्यम से एक किन्नर की प्रताड़ना को चित्रित किया है। वह अंत में एच.आय. व्ही. जैसे रोग से ग्रस्त होती हैं और वह आत्महत्या करके अपने हर पल मरे हुए जीवन का अंत करती हैं।

#### निष्कर्ष :

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सिर्फ जननांग दोष के कारण किन्नर समुदाय को समाज से उपेक्षित करना उचित नहीं है। यह समुदाय हमारी तरह ही मानवीय सुविधाओं से युक्त हैं। इन्हें भी दुःख, दर्द पीड़ा होती है। यह भी हमारी तरह मानव है। परिवार और समाज से बहिष्कृत होकर जीना बहुत ही मुश्किल होता है। किन्नर समुदाय को समाज घृणा की दृष्टि से देखता है। इसलिए इनका जीवन दुःखों से भरा हुआ है। जीवन के हर क्षेत्र में चाहे वह पारिवारिक हो, सामाजिक हो, आर्थिक हो या फिर राजनीति हो। हर क्षेत्र में इनके प्रति देखने के रवैय्ये को बदलना होगा ताकि यह समुदाय भी समाज की मुख्यधारा से जुड़कर सामान्य जीवन जी सके।

#### संदर्भ:

- 1) रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, पृष्ठ- 77
- 2) नीरजा माधव, यमदीप, सामायिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृ. 30
- 3) वही, पृ. 12
- 4) वही, पृ. 50
- 5) वही पृ. 87
- 6) वही, पृ. 118
- 7) भगवंत अनमोल, जिंदगी 50-50, राजकमल एंड सन्स प्रकाशन, 2017, पृष्ठ - 118
- 8) वही पृ. 167
- 9) वही पृ. 207

## स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी की भूमिका

समीना नायकवडी (कुरेशी)

डॉ. पतंगराव कदम आर्ट्स एंड कॉमर्स

कॉलेज, पेण, रायगढ़, महाराष्ट्र

Mob-7058051292,

ई मेल – saminanaikawdi@gmail.com

### शोध सारांश-

भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता आन्दोलन एक युगान्तकारी घटना है। यह विशाल देश लगभग सन् 1757 से 1947 तक परतंत्र रहा। भारत में ब्रिटिश शासन अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक स्थापित हो चुका था किन्तु अंग्रेजों की दुर्नीति और दमनचक्र ने एक नया जागृत राष्ट्रवाद उत्पन्न किया। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देश में पुनरुत्थान और राजनैतिक चेतना की लहर फैल गयी। तत्कालीन हिन्दी कवियों ने भी देश की दासता और करुण दशा से प्रभावित होकर जन जागरण में अपना सक्रिय योगदान किया। उनका हृदय भारत माँ को दासता की बेड़ियों से मुक्त कराने के लिए उद्वेलित हो उठा। देशवासियों को अतीत के स्वर्णिम वैभव और सांस्कृतिक परम्परा से परिचित कराने का दायित्व निर्वहन तो इन कवियों ने किया ही साथ ही साथ उनमें देशनिष्ठा एवं अस्मिता भी जागृत की। कवियों देश की दुर्दशा पर भी क्षोभ प्रकट कर अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष के लिए जनमानस को प्रेरित किया तथा क्रांति की समुचित पृष्ठभूमि तैयार की। उन्होंने अंग्रेजों की कपटनीति और साम्राज्यवाद का विरोध करते हुए, देशवासियों को आत्मसम्मान के साथ जीने का संदेश दिया। इसके साथ ही साथ बहुत से हिन्दी रचनाकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय होने के कारण बहुत से हिन्दी रचनाकारों ने विविध पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपने राष्ट्रवादी विचार जनता तक पहुँचाए हैं। स्वतंत्रता आंदोलन में भी नेताओं ने ज्यादा से ज्यादा भारतीय जनता का आंदोलन में सहभाग हो अतः सब एक मिलकर अंग्रेजों के खिलाफ लड़े जिसमें हिन्दी ने अहम भूमिका निभाई।

**बीज शब्द** – भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन, राजनैतिक चेतना, देशनिष्ठा, हिन्दी समर्थन।

**उद्देश** – हिन्दी साहित्य, हिन्दी साहित्यिक पत्र-पत्रिका और स्वतंत्रता आंदोलन के राजकीय नेताओं का हिन्दी समर्थन आदि दृष्टिकोण से हिन्दी का भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान कैसे रहा यह स्पष्ट करना।

### प्रस्तावना –

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।

बिन निज भाषा- ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल ॥

विविध कला शिक्षा अमित, ज्ञान अनेक प्रकार।

सब देसन से लै करहू, भाषा माहि प्रचार ॥

– भारतेंद्र हरिश्चंद्र

कवि भारतेंद्र हरिश्चंद्र कहते हैं कि सभी प्रकार की प्रगति का आधार अपनी मातृभाषा का विकास करना है। मातृभाषा ज्ञान के बिना हृदय का दुख दूर नहीं हो सकता। भारत में कुल 28 राज्य हैं और उन सबकी अपनी भाषा है कुल मिलाकर भारत में 121 भाषाएं बोली जाती हैं किंतु देश की मातृभाषा हिन्दी है। हिन्दी ने आज राष्ट्रभाषा, राजभाषा का स्थान प्राप्त किया है किन्तु वह सबसे



पहले हम सब हिंदुस्तानियों की सामान्य भाषा है। भले ही भारत में विभिन्न भाषाएं बोली जाती हो फिर भी भारतीय समाज में शिक्षित और अशिक्षित जनता को आसानी से हिंदी का प्रयोग करते हुए हम देखते हैं। हिंदी की अपनी एक विकास यात्रा है। उसके साहित्य की आपनी सांस्कृतिक विरासत है। इसी हिंदी ने ही सब को एकसूत्र में बाँध रखा है। स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन में हिंदी ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई भारतीय जनमानस में राष्ट्रवाद जागृत कर साहित्य, पत्र पत्रिकाओं के माध्यम से हिंदी ने स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन को गति दी। हिंदी के कितने ही ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय सहभागी हो हिंदी साहित्य के माध्यम से राष्ट्रवाद जागृत कर देशभक्ति, देशप्रेम बढ़ाया है। स्वतंत्रता आंदोलन के कुछ सेनानी हिंदी के प्रबल समर्थक और प्रचारक थे। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिंदी का परिमार्जन कर हिंदी को आगे बढ़ाया तो स्वतंत्रता आंदोलन के जनक बालगंगाधर तिलक ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका के भाषण में कहा था कि, “राष्ट्रभाषा मैं ऐसे राष्ट्रीय आंदोलन की बात कर सकता हूँ, जिससे सारा भारत एक सामान्य भाषा या राष्ट्रभाषा अपना सके एक भाषा राष्ट्रीयता का महत्वपूर्ण तत्व है। आप एक सामान्य भाषा के माध्यम से अपने विचार दूसरों तक पहुँचा सकते हैं। यदि आप राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधना चाहते हैं तो सबके लिए एक सामान्य भाषा से अधिक प्रबल शक्ति कोई और नहीं हो सकती।”

इस तरह हिंदी ने स्वतंत्रता युगीन चेतना को सशक्त तरीके से लोगों तक पहुँचा कर भारतीय राष्ट्रवाद को आगे बढ़ाया है तथा भारतीय जनमानस में देशप्रेम जगाया।

### हिंदी साहित्य द्वारा हिंदी का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान

भारतेन्दु युग के कवियों ने जहाँ एक ओर भारतीय इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों का स्मरण दिला कर देशप्रेम का नया स्वर फूँका, वहीं दूसरी ओर अंग्रेजों की न्यायप्रियता, संगठन-शक्ति, प्रजातंत्र में आस्था, उच्चशिक्षा आदि की भी प्रशंसा की किन्तु उन्होंने अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति का विरोध किया। देश के उद्योग-धन्धों की अवनति, आर्थिक शोषण, करों के बोझ से निरन्तर दबी जा रही जनता के दुख-दर्द का भी इन कवियों ने अनुभव किया। ये कवि क्षेत्रीयता से ऊपर उठकर राष्ट्र के नवजागरण के गीत गाने लगे। राधा चरण गोस्वामी, प्रेमधन, श्रीधर पाठक, राम देवी प्रसाद पूर्ण आदि कवियों ने देश के उत्कर्षार्कष के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों पर प्रकाश डालकर भारतेन्दु युगीन कवियों ने जनमानस में राष्ट्रीय भाव का बीजारोपण किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमधन, राधाकृष्ण दास, बाल मुकुंद गुप्त, अम्बिका दत्त व्यास आदि की कवितायें इसी परम्परा में लिखी गयी हैं। जैसे .

“बड़े बड़े बीरन के वंशज, बनि बैठे सब गोरी।

नाचि रिझावत परदेसिन को, लाज नहीं तनको री।

जु ले लहँगौ कोउ छोरी॥”

होलिकापंचक – प्रतापनारायण मिश्र

भारतेन्दु युगीन गद्य साहित्य की विशेषताओं में सबसे अधिक प्रमुख विशेषता राष्ट्रप्रेम का भाव जागृती है। जिसे तत्कालीन साहित्यकारों ने हास्य व्यंग के माध्यम से व्यक्त किया है। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के परिणामस्वरूप भारतवासियों में सोई हुई आत्मशक्ति के जागरण के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के प्रति लालसा बढ़ी, जिससे उनमें राष्ट्रीयता के भाव का उदय होना स्वाभाविक था। इसका प्रभाव इस युग की रचनाओं पर भी पड़ा। इस युग के रचनाकारों की रचनाओं में देशभक्ति का स्वर विशेष रूप से गुंजायमान रहा। उदाहरण- भारत दुर्दशा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा सन 1875 ई. में रचित एक हिन्दी नाटक। इसमें भारतेन्दु ने प्रतीकों के माध्यम से भारत की तत्कालीन स्थिति का चित्रण किया है। वे भारतवासियों से भारत की दुर्दशा पर रोने और फिर इस दुर्दशा का अन्त करने का प्रयास करने का आह्वान करते हैं। भारतेन्दु का यह नाटक अपनी युगीन समस्याओं को उजागर करता

है तथा साथ ही साथ उसका समाधान करता है। भारत दुर्दशा में भारतेन्दु ने अपने सामने प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वर्तमान लक्ष्यहीन पतन की ओर उन्मुख भारत का वर्णन किया है। जैसे-

“तीन नासी बुद्धि बल विद्या, धन बहू बारी।  
छाई अब आलस – कुमति – कलह – अंधियारी ॥  
भय अंध पंगु सब दीन- हीन बिखलाई।  
हा! हा! भारत दुर्दशा ना देखी जाई॥

- भारत दुर्दशा-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

द्विवेदी युग में खड़ी बोली हिंदी का प्रचलन और प्रतिष्ठापन आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा किया गया। राष्ट्रीयता द्विवेदी युगीन काव्य की प्रधान भावधारा थी। इस युग के प्रायः सभी कवियों ने देशभक्तिपूर्ण कविताओं का सृजन किया। उन्होंने परतंत्रता की निद्रा में सुप्त भारतीयों को जाग्रत करने का प्रयास किया। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में इस युग का विशेष महत्त्व है। भारतीय गौरव और सम्मान से जुड़े अनेक आन्दोलनों का प्रभाव इस युग में रहा। गांधी जी के आगमन से देश में नयी शक्ति संचरित हुई तथा राष्ट्रीयता की लहर पूरे देश में फैल गयी। कवियों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए क्रांति का आह्वान किया। उन्होंने गौरवपूर्ण अतीत के चित्रण के साथ ही वर्तमान की दुर्व्यवस्था का भी वर्णन किया है। इन कवियों ने सामाजिक कुरीतियों, अंधविश्वासों, निर्धनता, स्वदेशी भावना, असहयोग स्वातंत्र्य आन्दोलन आदि सभी को अपना काव्य विषय बनाकर सशक्त अभिव्यक्ति दी। आ.महावीर प्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शंकर, मन्नत द्विवेदी, रामचरित उपाध्याय, रूप नारायण पाण्डेय, लोचन प्रसाद पाण्डेय, गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही', रामनरेश त्रिपाठी, माधव शुक्ल, सत्यनारायण कविरत्न आदि की रचनाओं में राष्ट्रीय जागृति और क्रांति के चित्र मिलते हैं। लोक कवियों ने कांग्रेस, महात्मा गांधी, असहयोग आन्दोलन, चर्खा, स्वराज आदि से सम्बन्धित लोकगीतों की रचना कर हिंदी के माध्यम से देशप्रेम और स्वातंत्र्य चेतना जगाने की चेष्टा की है। जैसे-

“चल पड़े जिधर दो डग मग में  
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,  
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि  
गड़ गये कोटि दृग उसी ओर।”

- युगावतार- गांधी, सोहनलाल द्विवेदी

छायावाद की राष्ट्रीय चेतना अपने अंतिम स्तर पर केवल राष्ट्र तक सीमित नहीं रहती बल्कि संपूर्ण मानवता के स्तर पर सक्रिय हो जाती है। यह भारतीय चिंतन सृष्टि की वही धारणा है जिसमें राष्ट्रीय हितों व वैश्विक हितों को परस्पर विपरीत नहीं बल्कि सुसंगत शक्तियों के रूप में विश्व कुटुंबकम का व्याख्यान किया जाता है। स्वाधीनता के संघर्ष में नए विकल्प के तौर पर निराला सुझाते हैं। जैसे-

“शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,  
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनंदन।  
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सका त्रस्तए,  
तो निश्चित तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त ॥”

- राम की शक्तिपूजा - निराला

संक्षेप में यह स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य जगत के रचनाकारों ने हिंदी के माध्यम से राष्ट्रवाद की अवधारणा निर्माण से लेकर उसके विकास तक हिंदी के साहित्यिक विधा के माध्यम से अहम योगदान दिया ।

### हिंदी पत्र-पत्रिका के माध्यम से हिंदी का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान –

राजनैतिक, शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक विकास के परिणामस्वरूप जो राष्ट्रवाद उदित हुआ, उसे पत्रकार, बुद्धिजीवी, राष्ट्रवादी लोग विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अंग्रेजी शासन के दमन और पोषण के विरुद्ध लिखते रहे और जनता को जागरूक करके नवोत्थान के लिए मार्ग प्रशस्त किया । हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के पत्रकार अपनी राष्ट्रवादी भावनाओं और विचारों के लिए प्रख्यात रहे हैं । स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता साथ-साथ चलने लगे तत्कालीन परिस्थिति में रचनाकार एक साथ साहित्यकार और पत्रकार दोनों हुआ करते थे ।

पत्रकारिता के संबंध में कहा गया है कि वह शीघ्रता में लिखा गया साहित्य है और साहित्य प्रतीक, बिम्ब और अप्रस्तुत कथन के द्वारा अपना प्रतिपाद्य अभिव्यक्त करता है । साहित्य को समझने वाले लोगों का एक खास वर्ग होता है । किन्तु पत्रकारिता जनता की भाषा में जनता की बात करती है । संभवतः यहीं कारण है कि स्वतंत्रता अवधि के सभी रचनाकारों ने अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में साहित्य और पत्रकारिता दोनों को चुना जिस प्रकार देश के स्वाधीनता संग्राम में राष्ट्रनायकों का अप्रतिम योगदान रहा, उसी प्रकार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से भी लोगों में राष्ट्रीयता की भावना को जगाया गया राष्ट्रीयता की वह धारा जिसका विकास राजनीति के माध्यम से हो रहा था पत्रकारिता की शक्ति से संपन्न थी ।

### हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का प्रथम चरण –

1826 ई. में उदंत मार्टंड के प्रकाशन से लेकर 1873 ई. में भारतेन्दु के हरिश्चन्द्र मैगजीन तक को हिंदी पत्र पत्रिकाओं का प्रथम चरण माना जाता है । हिन्दी पत्रकारिता का प्रारंभिक काल के हिन्दी पत्र निम्नांकित रहे हैं । जुगलकिशोर शुक्ल का उदंत मार्टण्ड, 1826 में नील रतन हालदार का बंगदूत, 1829 में राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का बनारस अखबार, 1845 में प्रेमनारायण का मालवा अखबार, 1848 में तारामोहन मित्र का सुधाकर, 1850 में मुंशी सदा सुखलाल का बुद्धि प्रकाश, 1852 में मुंशी लक्ष्मण दास का ग्वालियर गजट, 1853 में श्यामसुंदर का समाचार सुधावर्ष, 1854 राजा लक्ष्मण सिंह का प्रजाहितैषी, 1855 बाबू श्रीलाल का जियाजी प्रताप, 1855 शिवनारायण का सर्वहितकारक, 1855 ग्रंथसभा का बुद्धिवर्धक ग्रंथ, 1856 कन्हैयालाल का राजपूताना अखबार, 1857 अजी मुल्ला का पयामें आजादी, 1857 नवीनचन्द्र राय का ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका, 1866 तत्वबोधिनी पत्रिका आदि पत्र राष्ट्रीयता की भावना से भरे हुए थे । इन पत्रों में समाजसुधार, राष्ट्रीयता, क्रांति की भावना एवं विदेशी शासन के विरुद्ध बगावत का स्वर है । जैसे-

“भारतेन्दु ने पत्रकारिता के माध्यम से साहित्य की अनेक नवीन विचारों को विकसित कर उनके माध्यम से स्वतंत्रता की भावना को विकसित किया । उनके पत्रों से राष्ट्रीय विचारधारा प्रस्फुटित हुई ।”

भारतेन्दु के पत्रों के अतिरिक्त पं. बालकृष्ण भट्ट का हिन्दी प्रदीप, पं. प्रताप नारायण मिश्र का ब्राह्मण, प्रेमधन का आनंद कादंबिनी और नागरी नीरद, पं. गौरी दत्त का देवनागरी प्रचारक, ठाकुर हनुमंत सिंह का राजपूत, रूद्रदत्त शर्मा द्वारा संपादित भारत मित्र, बालमुकुन्द गुप्त का हिन्दी बंगवासी, श्री तोताराम जी का भारत बन्धु, गोपाल राम गहवरी का भारत भूषण, पंडित मोहनलाल द्वारा संपादित मोहन चंद्रिका आदि इस युग के प्रमुख पत्रकार एवं पत्र-पत्रिकाएं थी । इनमें से अधिकांश संपादक एवं लेखक भारतेन्दु मण्डल के थे । इन सभी का मूल उद्देश्य स्वदेशप्रेम, भाषा एवं संस्कृति के प्रति अनन्य श्रद्धा, राष्ट्रप्रेम, हिन्दी भाषा का प्रचार आदि था ।

## हिंदी पत्र-पत्रिकाओं का द्वितीय चरण –

1900 ई. से 1920 ई. तक का युग द्विवेदी युग के नाम से जाना जाता है। विचारक और साहित्य नेता आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस काल का नाम द्विवेदी युग पड़ा। 1900 में प्रकाशित सरस्वती के माध्यम से पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी ने साहित्यिक पत्रकारिता की परंपरा को समृद्ध और परिष्कृत किया। सरस्वती पत्रिका में देशप्रेम विषयक कविता का प्रकाशन अनवरत जारी रही। पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी की जन्मभूमि भारतभूमि, आर्यभूमि प्यारा वतन, रूपनारायण पांडेय की मातृभूमि, लक्ष्मण सिंह की जन्मभूमि पूजन, रामनरेश त्रिपाठी की जन्मभूमि भारत रामचरित उपाध्याय की भव्यभारत आदि देश-प्रेम से ओत-प्रोत कविताएँ सरस्वती में लगातार प्रकाशित होती रही। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सन् 1903 से 1918 ई. तक लगातार सरस्वती का संपादन कर हिन्दी की साहित्यिक पत्रकारिता को नया आयाम दिया। यही कारण है कि पत्रकारिता के इस कालावधि को साहित्यिक पत्रकारिता का युग अथवा द्विवेदी युग कहा जाता है।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी लिखते हैं, “द्विवेदी जी के सरस्वती संपादन का इतिहास ऐसे अनेक आंदोलनों का इतिहास है। जो उनके व्यक्तित्व और तत्कालीन समाज के विकास का इतिहास भी कहा जा सकता है।

द्विवेदी कालीन प्रमुख पत्र-पत्रिकाएँ निम्नांकित हैं— पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी के संपादकत्व में जयपुर से समालोचक पत्रिका, शांतिनारायण का स्वराज्य पत्र, मदनमोहन मालवीय का अभ्युदय तिलक के केसरी का हिन्दी संस्करण, हिन्दी केसरी पं. सुंदरलाल का कर्मयोगी, कृष्णकांत मालवीय का मर्यादा, गणेश शंकर विद्यार्थी का प्रताप युवक और विशाल भारत युगांतर गदर वंदेमातरम्, प्रभा आदि इन पत्र-पत्रिकाओं ने स्वतंत्रता आंदोलन में अपना भरपूर योगदान दिया।

इन पत्रिकाओं पर गांधी के विचारों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। अब पत्रकारिता की धारा राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर महात्मा गांधी के नेतृत्व में गतिमान राष्ट्रीय आंदोलन का समर्थन करने लगी। इस युग में गांधी जी ने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से जन-जागरण सत्याग्रह एवं अछूतोद्धार का कार्य प्रारंभ कर दिया। नवजीवन और हरिजन पत्र के माध्यम से गांधीजी ने तो एक नए युग और सामाजिक क्रांति का उद्घोष कर दिया था। गाँधी जी से प्रभावित होकर स्वराज की माँग को प्रखर स्वर देने हेतु विभिन्न पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुयीं। जैसे— जबलपुर से कर्मवीर, आगरा से सुधाकर, लाहौर से ज्योतिश, सोहागपुर से हिन्दू, प्रयाग से हिंदुस्तानी अखबार, कलकत्ता से क्षत्रिय मार्तण्ड, काशी से अहिंसा, आज कानपुर से वर्तमान और लोकमत पटना से प्रजाबंधु तथा देश आदि पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुयीं।

## स्वतंत्रता आंदोलन में राजकीय नेताओं का हिंदी समर्थन –

स्वतंत्रता संग्राम भी अनेक नेताओं के नेतृत्व में लड़ा गया। स्वतंत्रता के साथ-साथ हमारे राजनेताओं ने आत्माभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का आंदोलन भी छेड़ा। भारत के लोग अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध बोलने लगे। हिंदी सीखना और बोलना स्वतंत्रता आंदोलन का एक अंग बन गया। आजाद हिंद फौज में हिंदी का ही बोलबाला था। सुभाषचंद्र बोस भी हिंदी में ओजस्वी भाषण देते थे। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गाँधी, राजगोपालाचारी, महामना पं. मदन मोहन मालवीय, आचार्य नरेंद्र देव, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन आदि नेताओं ने हिंदी की अस्मिता को पहचाना और हिंदी के प्रचार-प्रसार में जुट गए। महात्मा गाँधी ने तो राष्ट्रभाषा हिंदी के आंदोलन को स्वतंत्रता आंदोलन के साथ जोड़ दिया। उन्होंने स्वयं हिंदी सीखी और अन्य लोगों को भी हिंदी सीखने के लिए प्रेरित किया। शुरु में महात्मा गांधी जी के विचार गुजराती में और अंग्रेजी में ही प्रकट होते देखकर श्री जमनालाल बजाज ने गुजराती नवजीवन की हिंदी आवृत्ति, संस्करण निकालने का आग्रह किया। महात्मा जी मान गये और उनके अंग्रेजी और गुजराती लेखों का अनुवाद हिन्दी में प्रकट होने लगा। जो काम हिंदी नवजीवन ने किया, वही आगे जाकर हरिजनसेवक द्वारा आखिर तक होता रहा। देशप्रेम और हिंदी भाषा के प्रति अपने विशेष प्रेम के कारण गांधी जी ने जहां तक हो

सका हिंदी बोलने का और पत्र लिखने का नियम चलाया। इन नेताओं ने सभी भारतीय जनता को एकत्रित लाने और स्वतंत्रता आंदोलन को और अधिक प्रबल बनाने हेतु हिंदी का समर्थन किया था। हिंदी समर्थन हेतु नेताओं के वक्तव्य कुछ इस प्रकार थे। जैसे

राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन ने कहा था कि “मेरे लिए हिंदी की समस्या भारत की स्वतंत्रता की समस्या है। भाषा की समस्या राष्ट्र की समस्या से संबंधित होती है। भारत में अंग्रेजी भाषा की प्रधानता स्वीकार करना अंग्रेजी जीवन-सिद्धांत के सामने सिर झुकाना है। यह हमारी बौद्धिक दासता का सूचक है।”

गाँधीजी ने कहा था, “राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है।”

#### निष्कर्ष –

इस प्रकार राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्रीय एकता और भावात्मक एकता का संवर्धन और पोषण नहीं हो सकता। प्राचीन काल से ही हिंदी ने इसका पोषण किया है। वास्तव में हिंदी लोकभाषा है और उसकी शक्ति जनशक्ति है। इस देश की सामासिक संस्कृति को व्यक्त करने की क्षमता हिंदी में है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान हिंदी न केवल पूरे देश को जोड़ने वाली राष्ट्रीय कड़ी बनी बल्कि वह अपने आप में आंदोलन का एक पवित्र लक्ष्य थी। हिंदी ने अपने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रवाद को आगे बढ़ाया और स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान दिया।

#### संदर्भ ग्रंथ –

1. होलिकापंचक – प्रतापनारायण मिश्र
2. भारत दुर्दशा-भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
3. युगावतार- गांधी, सोहनलाल द्विवेदी
4. राम की शक्तिपूजा – निराला
5. नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी में भाषण दिसंबर 1905 लोकमान्य तिलक, हिज राइटिंग्स एंड स्पीचेज पृ. 2
6. हिमांशु शेखर सिंह, हिन्दी पत्रकारिता और काशी.पृ . 69
7. ओ. पी. शर्मा, पत्रकारिता और उसके विभिन्न स्वरूप, पृ.25
8. महिपाल सिंह एवं देवेन्द्र मिश्र, विश्व बाजार में हिंदी, पृ.83

## स्वतंत्रता आंदोलन में शहीद भगतसिंह का योगदान

पूजा काशीनाथ मुठ्ठे

पीएच. डी. (हिंदी) शोध छात्रा,

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाड़ा विश्वविद्यालय,

छत्रपति संभाजीनगर, महाराष्ट्र

E-mail- [poojamutthe@gmail.com](mailto:poojamutthe@gmail.com)

भ्रमण ध्वनि नम्बर: 7028147012

### भूमिका-

इतिहास के पन्नों को अगर पलटा जाए तो आज भी भगतसिंह का बलिदान हमारे दिल को छू लेता है। देश को आजाद करने के लिए अनेक स्वतंत्र संग्राम हुए। उसमें केवल महात्मा गांधी ही नहीं, बल्कि भगतसिंह जैसे अनेक नौजवानों ने अपना बलिदान दिया। भगतसिंह एक महान क्रांतिकारक थे। उनका विचार था कि, आत्मरक्षा के लिए अगर कोई हिंसा की जाए तो वह हिंसा नहीं होती बल्कि आत्मरक्षा होती है।

भगतसिंह का जन्म 28 सितंबर 1907 को लायलपुर जिले के बंगा में हुआ था। जो अब पाकिस्तान में है। उनका पैतृक गांव खटकड़ कलॉ है। जो पंजाब राज्य, भारत में है। उनके जन्म के समय उनके पिता किशनसिंह, चाचा अजीतसिंह और स्वर्णसिंह जेल में थे। भगत सिंह पर इन सभी का गहरा प्रभाव पड़ा था। उन्होंने बचपन में ही अंग्रेजों के अत्याचार को बहुत करीब से देखा था। वे बचपन से ही अंग्रेजों से घृणा करने लगे थे। भगतसिंह के मन में क्रांति की चिंगारी तभी जल पड़ी जब उन्होंने 1919 में जालियांवाला बाग की घटना को उन्होंने बहुत करीब से देखी और वह गंभीर रूप से उस घटना से प्रभावित हुए। बचपन में वह महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में भाग लेने लगे, और उनके विचारों पर चलने लगे। 14 वर्ष की आयु में ही भगतसिंह ने सरकारी स्कूलों की पुस्तकें और कपड़े जला दिए। पर चौरा-चोरी की घटना के कारण महात्मा गांधी ने असहयोग आंदोलन पीछे ले लिया। इसका सदमा भगतसिंह पर बहुत गहरा पड़ा। उस समय भगतसिंह लाहौर के नेशनल कॉलेज में पढ़ते थे। वहां उनकी मुलाकात सुखदेव से हुई।

भगतसिंह हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, संस्कृत, पंजाबी, बंगाल और आयरिश भाषा के मर्मज्ञ चिंतक और विचारक थे। भगतसिंह भारत में समाजवाद के पहले व्याख्याता हैं। भगतसिंह अच्छे वक्ता, पाठक और लेखक भी थे। उन्होंने 'अकाली' और 'कीर्ति' दो अखबारों का संपादन भी किया। साम्यवादी विचारों को मार्क्स, लेनिन, एंजिल्स आदि को पढ़ने के अतिरिक्त भगतसिंह ने अप्टॉन सिंक्लेयर, जैक लंडन, बर्नड शा, चार्ल्स डिकेन्स साहित्य सहित तीन सौ से अधिक महत्वपूर्ण किताबें पढ़ रखी थी। भगतसिंह का अध्ययन व्यवस्थित वैज्ञानिक और व्यवहारिक था। वह पुस्तकों के नोट्स बनाकर साथियों से विमर्श करने के बाद अंतिम राय कायम करने के पक्षधर थे। इस दौरान भगतसिंह को अधिकतर मार्क्सवाद से संबंधित पुस्तकें पढ़ने को मिली। मथुरादास ठाकुर ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि, "भगतसिंह और सुखदेव को छोड़कर और किसी ने ना तो समाजवाद को अधिक पढ़ा है और ना ही मनन किया था। भगतसिंह और सुखदेव का ज्ञान भी हमारी तुलना में अधिक ही था।" 1 लाहौर के नेशनल कॉलेज की पढ़ाई छोड़ कर भगतसिंह ने लाहौर में रहकर वे युवाओं में क्रांतिकारी विचारों को फैलाने लगे। पंजाब में 'हिंदुस्तान रिपब्लिकन

एसोसिएशन' के विचारों को फैलाने के लिए उन्होंने 1926 में 'नौजवान भारत सभा' की स्थापना की। वे सभी समाजवादी विचारधारा से प्रभावित थे। वे युवाओं की सहायता से भारत में मजदूरों और किसानों का गणराज्य स्थापित करना चाहते थे। उनके दल के प्रमुख क्रांतिकारी- सुखदेव, यशपाल, चंद्रशेखर आजाद एवं राजगुरु थे। भगतसिंह ने सशस्त्र क्रांति को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एकमात्र हथियार माना।

भगतसिंह ने अपने क्रांतिकारी जीवन की शुरुआत कानपुर से गणेश शंकर विद्यार्थी के 'पत्र प्रताप' से की थी। उसमें वह बलवंत के नाम से लिखा करते थे। यह विद्यार्थी और भगतसिंह की घनिष्ठता का रहस्य बहुत बाद में उजागर हुआ। अपने प्रखर राष्ट्रवाद के कारण भगतसिंह ने अपने साथियों का विदेश जाकर आर्थिक सहायता प्राप्त करने का प्रस्ताव भी ठुकरा दिया। दरअसल उन्होंने ही क्रांतिकारियों को एकजुट करने की पहली गंभीर कोशिश की थी। 1928 में 'साइमन कमीशन' का विरोध करते हुए, 'लाला लजपतराय' पुलिस की मार से शहीद हो गए। सारे देश में निराशा और बेबसी की लहर दौड़ गई। इस राष्ट्रीय अपमान का बदला लेने के लिए भगतसिंह ने राजगुरु के साथ मिलकर 17 दिसंबर 1928 को इसके दोषी अंग्रेजी अफसर 'साण्डर्स' की गोली मारकर हत्या कर दी। इनमें चंद्रशेखर आजाद ने उनकी पूरी सहायता की थी। इस कार्यवाही के बाद भी लोगों में आजादी की लड़ाई के लिए उत्साह और क्रांतिकारियों का संकल्प, विचारधारा उन तक नहीं पहुँच पाई थी। इसी कारण भगतसिंह और उनके साथियों को निराशा प्राप्त हुई। किसी व्यक्ति को मारना भगतसिंह का उद्देश्य नहीं था। वह अपने देशवासियों को अपने समाजवादी लक्ष्यों के बारे में बताना चाहते थे। अंततः भगतसिंह देशवासियों तक अपनी आवाज पहुँचाने के उद्देश्य से केंद्रीय असेंबली में बम फेंकने की योजना बनाई। ताकि देश का ध्यान बहुजन क्रांति की ओर खींचा जा सके।

हरदीपसिंह के अनुसार "8 अप्रैल 1929 को इम्पीरियल असेम्बली, दिल्ली में भगतसिंह और बी.के. दत्त ने बम विस्फोट करने के बाद गिरफ्तारी देते हुए 'इन्कलाब जिंदाबाद' का नारा लगाकर अंग्रेज सरकार की जड़ें हिला दी। असेम्बली में लाल रंग के पर्चे फेंके गए जिन पर लिखा गया था 'बंद कानों को सुनने के लिए धमाके की जरूरत होती है।"<sup>2</sup> भगतसिंह और उनके साथियों का बम फेंकने का मकसद किसी को मारना नहीं था। बल्कि ब्रिटिश हुकूमत द्वारा लागू किए गए दो बिलों पब्लिक सेफ्टी बिल और ट्रेडी डिस्प्यूट बिल का विरोध करना था। वह वहां से भाग सकते थे, पर उन्होंने अपनी गिरफ्तारी स्वयं कराई। वहां से न भागने के पीछे उनका मकसद अपनी बात लोगों तक पहुंचाने की थी। उस दौर में ब्रिटिश दमन इतना तेज था कि, किसी भी इन्कलाबी किताब, विचार लोगों तक पहुंचाना लगभग नामुमकिन था। भगतसिंह और उनके साथियों ने अपनी गिरफ्तारी देने के बाद कोर्ट में अपने बयान दिए और उम्मीद की कि, इस बयान को अखबारों में छपा जाएगा और शायद इसी बहाने लोगों तक अपने विचार और सोच वे लोगों तक पहुँचा सकेंगे।

भगतसिंह ने विचार प्रकट करते हुए कहा कि, "क्रांतिकारियों का विश्वास है कि, देश को क्रांति से ही स्वतंत्रता मिलेगी वे जिस क्रांति के लिए प्रयत्नशील हैं और जिस क्रांति का रूप उनके सामने स्पष्ट है उसका अर्थ केवल यह नहीं कि, विदेशी शासकों तथा उनके पिटटुओ से क्रांतिकारियों का सशस्त्र संघर्ष हो, बल्कि इस सशस्त्र संघर्ष के साथ-साथ नवीन सामाजिक व्यवस्था के द्वारा देश के लिए मुक्त हो जाए। क्रान्ति पूँजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अन्त कर देगी। यह राष्ट्र को अपने पैरों पर खड़ा करेगी। उससे नवीन राष्ट्र और नए समाज का जन्म होगा। क्रांति से सबसे बड़ी बात तो यह होगी कि वह मजदूर तथा किसानों का राज्य कायम कर उन सब को सामाजिक अवांछित तत्वों को समाप्त कर देगी जो देश की राजनीतिक शक्ति को हाथियाये बैठे हैं।"<sup>3</sup> भगतसिंह का मकसद पूँजीवाद को मिटाना था। उनका सपना संपूर्ण स्वतंत्रता का था। वे चाहते थे कि, देश में कोई किसी का शोषण नहीं करेगा। सब को स्वतंत्रता से जीने का अधिकार है। जाति, प्रांत के नाम पर कोई लड़ाई नहीं करेगा। मुल्क सभी के लिए समान है। भगतसिंह इन मूल्यों के लिए लड़े और समाज को संदेश देते रहे कि "देश के

नौजवानों ने बहुत इंतजार कर लिया। बहुत दिनों तक घुट-घुट कर जी लिये। इस या उस चुनावबाज पार्टी से बदलाव की उम्मीदें पालकर बहुत धोखा खा लिया। उन्हें सोचना ही होगा कि अब और कितना छले जायेंगे? अब और कितना बर्दाश्त करेंगे? दुनियादारी के भंवरजाल में कब तक फँसे रहेंगे? कितने दिन तक चुनौतियों से आंखें चुरायेंगे? उन्हें भगतसिंह के संदेश को सुनना होगा। नई क्रांति की राह पर चलने के लिए वक्त आवाज दे रहा है, उसे सुनना होगा”<sup>4</sup> भगतसिंह ने अपनी वैचारिक समझदारी को समाज के सामने लाने का प्रयास किया था। उनके लिए आजादी का ध्येय था सिर्फ समाजवाद और धर्मनिरपेक्ष राज्य।

जेल में भगत सिंह दो साल रहे। उन्होंने वहां की दयनीय स्थिति को देखकर जेल में भूख हड़ताल शुरू की। उनकी मांगें थी कि, कैदियों को खाने लायक अच्छा खाना, कपड़े और किताबों की व्यवस्था की जाए। जेल में उन्होंने अनेक अत्याचारों को सहा। उनकी भूख हड़ताल रोकने की बहुत कोशिश की गई, पर वो कामयाब नहीं हो सके। 64 दिनों तक भूख हड़ताल जारी थी जिसमें उनका एक साथी यतींद्रनाथ दास ने तो उस भूख हड़ताल में अपने प्राण ही त्याग दिए थे। जब भगतसिंह जेल में थे। इस दौरान वे लेख-लिखकर अपने क्रांतिकारी विचार व्यक्त करते रहे। अपने लेखों में उन्होंने कई तरह के पूंजीपतियों को अपना शत्रु बताया है। उन्होंने लिखा है कि, मजदूरों का शोषण करने वाला चाहे वह एक भारतीय ही क्यों न हो वह उनका शत्रु है। उन्होंने जेल में अंग्रेजी में एक लेख भी लिखा था। जिसका शीर्षक था ‘मैं नास्तिक क्यों हूँ?’ जेल में रहते हुए उनका अध्ययन बराबर जारी रहा। इस दौरान उनके लिखे गए लेख व परिवार को लिखे गए पत्र आज भी उनके विचारों के दर्पण हैं।

असेंबली में धमाके के बाद जो मुकदमा चलाया गया। उस मुकदमे को भगतसिंह ने तथा उनके साथियों ने गंभीरता से नहीं लिया। उनका मकसद केवल अपने विचारों को जनता तक पहुंचाना था। अंततः इस मुकदमे का फैसला सुनाया गया। जिससे भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी तथा 9 क्रांतिकारियों को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई। सरकार ने 24 मार्च 1931 को तीनों क्रांतिकारियों को फाँसी देने का निर्णय लिया। सामान्यता: फाँसी प्रातःकाल के समय दी जाती थी। तथा शव परिजनों को सौंप दिये जाते थे। परंतु सरकार ने जनता के भय से दोनों परंपराओं को नहीं निभाया। 23 मार्च 1931 को तीनों को सायं के सात बजे फाँसी दे दी गई। तथा गुप्त तरीके से उनके शवों को सतलज नदी के तट पर ले जाकर उनका अंतिम संस्कार कर दिया गया।

भगत सिंह भारत के एक प्रमुख स्वतंत्रता सेनानी क्रांतिकारी थे। आज भी सारा देश उनके बलिदान को बड़ी गंभीरता व सम्मान से याद करता है। उनके जीवन पर आधारित कई हिन्दी फिल्में भी बनी हैं जिनमें- द लीजेंड ऑफ भगत सिंह, शहीद, शहीद भगत सिंह आदि प्रमुख हैं।

### संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. हरदीप सिंह, - शहीद सुखदेव नौधरा से फाँसी तक - राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ, जनवरी - 2017, पृष्ठ क्र. 25
2. डॉ. हरदीप सिंह, - शहीद सुखदेव नौधरा से फाँसी तक - राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ, जनवरी - 2017, पृष्ठ क्र. 58
3. भगतसिंह, अंतिम पृष्ठ - बम का दर्शन और अदालत में बयान - राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ, जनवरी - 2017
4. भगतसिंह, प्रस्तावना - बम का दर्शन और अदालत में बयान - भगतसिंह, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ, जनवरी - 2017



## परंपरा से भिन्न तुलसी का काव्यादर्श

डॉ. सुमित्रा कोतपल्ली,  
प्राच्य भाषा विभाग  
सर सी आर रेड्डी कॉलेज,  
एलुरु

रामधारा के अंतर्गत साहित्यिक उत्कर्ष और गुणों के कारण जिनका नाम गौरव के साथ स्मरण किया जाता है, वे कवि शिरोमणि गोस्वामी तुलसी दास हैं। तुलसीदास ने अपने को कवि के रूप में कभी भी चर्चित नहीं किया और मानस में स्पष्ट घोषणा की कि “भणिति भदेस बस्तु भल बरनी” रामकथा जगमंगल करनी। “ किंतु उन्होंने जिस रामकथा की स्वर्ण मुद्रिका में अपनी कविता के रत्नों को जड़ा उसकी तृप्ति से रामकथा भी देदीप्यमान हो गई। ‘रामचरितमानस’ अपने समय में जीते हुए मनुष्य और अन्य जीवों के कलुषित मिटाकर मंगल करणी कलिमल हरिणी रघुनाथ की कथा है। यह कथा नर से नारायण बनने की भी है। यह आत्मकल्याण की है। यह कथा सकल लोक के लिए जग पावनी गंगा के समान है। यह भारतीय वाङ्मय की अमृत-कथा है। संस्कृत साहित्य शास्त्र में कभी इतना ही काव्य लक्षण पर्याप्त समझा जाता था कि काव्य या साहित्य वही है जिसमें शब्द और अर्थ साथ हो। “शब्दार्थ सहितौ काव्यम्।” यह लक्षण काव्य को वेद और पुराणेतिहास से पृथक् कर देता है। पर उसके स्वकीय वैशिष्ट्य को पूर्णतया स्पष्ट नहीं करता। ‘वेद’ में शब्द की प्रधानता होती है, शब्द गौण रहता है। काव्य में शब्द और अर्थ दोनों की प्रधानता है, प्रत्युत दोनों सयुक्त रहते हैं जल तरंग की भांति”<sup>1</sup>

वास्तव में तुलसीदास ने अपनी काव्य संवेदना से मानवीय हृदयतंत्री को जिस ढंग से झकृत किया और रसमग्नता की जैसी स्थितियां निर्मित की हैं, वे अन्यत्र विरल हैं। उन्होंने रीति काव्यों की भांति कृत्रिम शब्दावली के प्रयोग द्वारा भाव व्यंजना के उत्कर्ष उसकी सरसता पर कथमपि कुठाराघात नहीं किया। उन्होंने जन-मानस को स्पर्श किया और अपने कौशल द्वारा उनके प्रस्तुत भावों को उद्घाटित किया। जन मानस पर उनकी भाव-व्यंजना की सहजता और मधुरता का क्या था, इसे एडविन ग्रीव्ज के शब्दों में देखें “Tulasi Das wrote not to display his learning or, to tickle the ear of pedants, he wrote the people and has his reward. No poet in England has ever been to the masses what tulasi das has been to the people of his land.”<sup>2</sup>

गोस्वामी तुलसीदास ने अपने काव्य में संत-असंत को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। अधिकांश संत शब्द से तात्पर्य उन्होंने ऐसा महापुरुषों से लिया है, जिनका जीवन सद्वृत्तियों से संचालित है। जिनके कार्य – व्यवहार आत्मोन्नयन के साथ-साथ किसी न किसी रूप में विश्वकल्याण के प्रवृत्त हैं। जिनमें स्वार्थ बुद्धि की अपेक्षा परमार्थ बुद्धि की प्रधानता है। ऐसी महान विभूतियों के अभिज्ञान के लिए उन्हें वे सारे अभिधान स्वीकार्य हैं, जो संत, साधु, सज्जन, सत्पुरुष, महात्मा, महापुरुष आदि किसी भी पर्याय के रूप में प्रचलित हो, यो तो संत के अस्तित्व होना आवश्यक है। “सज्जन यदि राम के स्नेह से भी सरस हो तो वह साधुओं की सभा में विशेष आदर का पात्र हो जाता है। तथापि यदि कोई नास्तिक भी निश्छल भाव से सारे संसार के प्राणियों का उद्धार करता है तो वह भी संत कोटि में आ जाता है।”<sup>3</sup> राक्षसों के समाज में सबके सब रावण के समर्थक नहीं हैं। विभीषण की सात्विकता तो उजागर है। लेकिन कई ऐसे पात्र भी हैं जो रावण के प्रभाव या भय से शरीर से उसके साथ हैं, लेकिन मन-मस्तिष्क से चाहते हैं कि रावण का आतंक समाप्त हो लंकिनी इसका प्रमाण है। एक सीमा तक कुंभकर्ण भी राम से युद्ध करने के पूर्व अपने अंतर्द्वंद से

रावण कि अनीति को प्रमाणित करता है। मंदोदरी, त्रिजटा, सुलोचना आदि ऐसी नारी शक्तियाँ हैं, जो लंका के वैभव के बीच भी सद-असद का विवेक नहीं खोती हैं।

‘रामचरितमानस’ में श्री राम द्वारा शबरी को दिया गया नवधा- भक्ति का उपदेश। भागवत में प्रतिपादित श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सांख्य एवं आत्मनिवेदन के नौ रूपों वाली नवधा भक्ति के स्थान पर वे जिस नवधा-भक्ति का कथन श्री राम द्वारा कराते हैं, उसमें भी भक्ति के लोक संग्राही रूप को ओझल नहीं होने देते। संतो की संगति प्रभु के कथा-प्रसंग में रति, गुरु पद सेवा, प्रभु का गुणगान, दृढ़ विश्वास के साथ राम नाम के मंत्र का जप, इन्द्रिय निग्रह एवं शील के साथ निरंतर सज्जनता का निर्वाह, जगत भर को समत्व भाव के साथ राममय देखते हुए “संतो का सम्मान करना, संतोष-भाव के साथ दूसरे के दोषों की उपेक्षा करना तथा सबके साथ निश्छल एवं सरल बर्ताव करते हुए प्रभु राम का हृदय में भरोसा रखकर हर्ष एवं दैन्य (दीनता) से ऊपर उठना।”<sup>4</sup>

‘रामचरितमानस’ उत्तरकाण्ड में भरत के प्रश्न के उत्तर में संत-असंत के लक्षण बताते हुए प्रभु श्री राम कहते हैं कि परोपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं और पर-पीड़ा के सामान कोई अधर्म नहीं है और यह बात केवल मैं नहीं कह रहा हूँ। समस्त पुराणों और वेदों का यह निष्कर्ष है जिस ज्ञानी जन जानते हैं।

“परहित सरिस धर्म नहीं भाई। परपीड़ा सम नहीं अधमाई।

निर्णय सकल पुराण वेद कर काहेड़ा तात जानहि कोविद नर ॥

क्या दुनिया में इससे अच्छी भी कोई धर्म-अधर्म की परिभाषा हो सकती है। जैसे मानव - मानव में भेद न करने वाले और प्राणी मात्र की कल्याण-कामना से ओत-प्रोत असंख्य विचार भरे पड़े हो। इसी धर्म और संस्कृति के अमर गायक हैं, गोस्वामी तुलसीदास इनकी कहीं गई धर्म की परिभाषाओं को मानकर इस मानव-धर्म को यदि संसार के सारे मनुष्य अपना ले तो शायद कोई समस्या ही शेष न बचे तब शायद पृथ्वी पर विनाशकार्य उत्पादों का अविष्कार ही बंद हो जाये और वह कल्याणकारी पथ पर द्विगुणित वेग से आगे बढ़ सके। तब शायद मनुष्य मनुष्य के रास्ते की बाधा बनकर उसे नीचा दिखाने का काम न करे और वह एक दूसरे का सहारा बन कर परस्पर ऊँचा उठने-उठाने में लगे। पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य कहीं स्वर्ग खोजने की जगह तब शायद यहीं वह स्वर्ग देखने को मिल सके।

तुलसी के ‘रामचरितमानस’ का अखण्ड पाठ भी होता है, नियमित परायण भी होता है, रामलीलाएँ भी होती हैं और राम नाम भी हर समय लिया जाता है, लेकिन इसके लिये जीवन कहीं ठहरता नहीं, जीवन की अनन्य गतिविधियों के साथ यह सब भी चलता रहता है। यह तुलसी की भक्ति की व्यवहारिकता का प्रमाण है। उसकी सहजता का साक्ष्य है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं, ईश्वर में पूरी आस्था और मनुष्य का पूरा सम्मान ये दोनों दृष्टियाँ तुलसी में एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ‘सियाराममय सब जग जानी। करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी।’ जैसे पंक्तियाँ इस गहरे आत्मविश्वास पर ही लिखी जा सकती हैं, जहाँ ईश्वर और मनुष्य दोनों की एक साथ प्रतिष्ठा हो। “अनुभूति और अभिव्यक्ति का जैसा संश्लिष्ट रूप रचना में वस्तुतः प्रत्याशित है, वह ईश्वर और मनुष्य की इस एकरूपता में से निकलता है।”<sup>5</sup> रामचरितमानस तुलसीदास का ही नहीं अपितु विश्व साहित्य के श्रेष्ठतम ग्रंथ में एक है। काव्य का लक्ष्य लोकमंगल मानते हुए अपने आराध्य मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र के माध्यम से तुलसी ने जीवन का आदर्श रूप प्रस्तुत किया है।

## सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1 विश्वनाथ मिश्र- हिंदी साहित्य का अतीत, पृ. 257.

2 एडविन ग्रीव्ज- A Sketch of Hindi Literature, p. g 59

3 कल्याण- श्री राम भक्ति अंक पृ 123.

4 रामचरितमानस, अरण्य काण्ड, दोहा 34 - 35, पृ. 611 - 612

5 डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी- हिंदी साहित्य और संवेदना का अवरूप, पृ. 58.

साहित्याकारा

# गुरमति साहित्य में कबीर और अन्य कवियों का योगदान

गौरव यादव

डा. बीरी सिंह महाविद्यालय, टूण्डला, फिरोजाबाद

मोबाइल नं. 7838976871

ई-मेल : yadangrv2805@ gmail.com

## शोध सारांश

सिख धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहिब' में निर्गुण संतों- कबीरदास, रैदास, पीपा, धन्ना आदि के साथ सगुण भक्तों- रामानंद, सूरदास, मीराबाई, सूफी शेख फरीद आदि संत कवियों को भी संकलित किया गया है। इन सभी में कबीरदास जी का विशिष्ट स्थान है, क्योंकि 'आदिग्रंथ' में सिख गुरुओं के प्रायः बाद कबीर-वाणी को जगह मिली है तथा गैर सिख संतों में सर्वाधिक संकलित रचनाएँ भी कबीर की ही हैं। 'आदिग्रंथ' कबीर-वाणी का इतना व्यापक संकलन प्रस्तुत करने वाला एकमात्र प्राचीनतम ज्ञात स्रोत है।

'आदिग्रंथ' में संकलित विभिन्न संतों की टिप्पणियों तथा कबीर की स्वयं की कविताई के अंतःसाक्ष्यों से कबीर संबंधी ऐतिहासिक तथ्यों पर भी प्रकाश पड़ता है। इसमें कबीर अपने परिचित 'अकखड व्यक्तित्व' निर्गुणवादी सिद्धांतों के साथ उपस्थित होते हैं, जिनमें अपनी अभिज्ञानात्मक अनुभूति के उद्घाटन, सतगुरु महिमा की प्रतिष्ठा, ज्ञान द्वारा माया से मुक्ति, द्वैत एवं अद्वैत से विलक्षण ब्रह्म की अवधारणा का प्रतिपादन और मानव जनित समस्त विषमताओं, जाति-सम्प्रदाय आधारित विभेदों ब्राह्मचारों आदि के खंडन की चेतना तथा प्रेमाधारित समरस समाज के निर्माण की बैचेनी है। इस प्रकार 'आदिग्रंथ' में कबीर वाणी के संकलन के विविध आयामों पर अध्ययन की अनेक सम्भावनाएँ विद्यमान हैं।

**बीज शब्द :-** गुरमति, गुरुग्रंथ साहिब, कबीर वाणी, सिख, संतकवि आदि।

## गुरमति साहित्य

गुरमत का शाब्दिक अर्थ है गुरु का मत अर्थात् गुरु के नाम पर संकल्प। यह सिखों द्वारा किसी भी धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक मुद्दों से संबंधित गुरु के नाम पर आयोजित सभा में अपनाई गई सलाह या संकल्प है। अठारहवीं शताब्दी के आस-पास सिखों ने बैसाखी और दिवाली के दिन अमृतसर के अकाल तख्त पर इकट्ठे हुए और गुरुग्रंथ साहिब की उपस्थिति में एक पाठ्यक्रम की योजना बनाने के लिए एक साथ परामर्श लिया, विचार-विमर्श से निकलने वाला अंतिम निर्णय गुरमत का था। इसने खालसा की सामान्य इच्छा का प्रतिनिधित्व किया और इसने गुरु की मंजूरी को आगे बढ़ाया, सभा ने गुरु ग्रंथ साहिब के अधिकार को निभाया।

सिख पंथ का आधिकारिक धर्मग्रंथ 'गुरुग्रंथ साहिब' है। दसवें गुरु गोविंद सिंह के समय, 1708 ई. में व्यक्तिगत गुरु-परंपरा का अंत हुआ, तब से गुरु पद 'ग्रंथ साहित्य' में ही निहित हो गया और ग्रंथ को 'शब्द गुरु' का दर्जा मिला, जो दुनिया भर में विभिन्न धर्मों में एक अनूठा दृष्टांत है। 'ग्रंथ साहिब' तदयुगीन राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों के विविध चित्रों के साथ मध्यकालीन भक्ति-आंदोलन में अंतर्निहित व्यापक वैचारिकी, दर्शन, अध्यात्म, सत्संग आदि का सरस दस्तावेज है तो संत-कवियों की रचनाओं के अपेक्षाकृत निरपेक्ष प्रामाणिक संकलनों के कारण इसका साहित्यिक महत्व भी है। इस प्रकार यह भारतीय साहित्यिक

परम्परा का एक रत्नकोष है जिसमें सिख गुरुओं के अलावा विभिन्न क्षेत्रों, विविध विचार-सरणियों, भिन्न जाति-धर्म के संतो की बानियों को श्रद्धापूर्वक समाहित किया गया है।

'गुरुग्रंथ साहिब' का प्रारंभिक नाम 'ग्रंथ साहिब' था, किंतु आगे दसवें गुरु गोविंद सिंह कृत 'दसम ग्रंथ' से भेद दर्शाने के लिए इसे 'आदिग्रंथ' कहा गया, जिसका अभिप्राय है कि सिख परम्परा का यह आदिग्रंथ है।

'गुरुग्रंथ साहिब' समस्त मानव समुदाय के लिए एक सार्वभौमिक साधना-पद्धति का प्रतिपादन करता है। यह हर प्रकार के आचारवाद, रूढ़िवाद, प्रतीकवाद को नकारता है तथा ईश्वर व मनुष्य के बीच किसी भी तरह के आडम्बरों का विरोधी है। 'ग्रंथ साहिब' सच्चे व ईमानदार श्रम को महत्व देता है तथा संन्यास व वैराग्य की निंदा करता है। इस प्रकार यह श्रमिक एवं ग्रहस्थों का धर्म प्रतिपादित करता है। यह स्त्रियों को पुरुषों से हीन नहीं मानता। यह हिंदू वर्णाश्रमवाद, जातिवाद, छुआछूत का विरोधी है तथा जन्म, स्थान, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव को नकारता है। 'गुरुग्रंथ साहिब' कर्म, भक्ति तथा ज्ञान का संतुलन प्रतिपादित करता है। शरीर की सार्थकता जहाँ परिवार-समाज की भलाई हेतु सत्कर्मों में है, वही मन को ईश्वर की ओर उन्मुख होना चाहिए, सेवाभाव इसका संदेश है।

### गुरुमति साहित्य में कबीर : योगदान एवं प्रयोजन

'आदिग्रंथ' में सिख परम्परा के बाहर के जिन संत कवियों को जगह मिली है, उनमें कबीर जी की विशेष स्थिति दो कारणों से है। प्रथम तो यह कि विभिन्न रोगों के अंतर्गत गुरु-बानियों के ठीक बाद प्रायः कबीर की बानियों को रखा गया है। ऐसा 'सलोकों' के अंतर्गत भी देखा जा सकता है। दूसरा यह कि विभिन्न गैर सिख संतों में कबीर की रचनाएँ सर्वाधिक हैं।

'आदिग्रंथ' में सत्रह विभिन्न रागों-सिरी राग, आसा, सूही तिलंग, बिलावल, मारु, केदारा, भैरो, बसंत, सारंग, सोरठ, गउडी, धनाश्री तथा परभाती के अंतर्गत कबीरदास के तीन लम्बे पदों- बावन अखरी, थिति और वार सत सहित कुल 228 पदों के साथ 243 श्लोकों को संकलित किया गया है। यदि शेष अन्य गैर सिख संतों की रचनाओं को मिला भी दें, तब भी कबीरदास की संकलित रचनाओं की संख्या उनसे अधिक है। हालांकि कबीरदास की समस्त रचनाओं को 'आदिग्रंथ' में जगह नहीं मिली है।

### कबीर के अध्ययन में आदिग्रंथ का महत्व

कबीर के अध्ययन के संदर्भ में 'आदिग्रंथ' के महत्व को दो स्तरों पर रेखांकित किया जा सकता है। प्रथम स्तर कबीर की रचनाओं के प्रामाणिक पाठ से सम्बद्ध है। हाल ही में प्राप्त 582 ई. की 'फतेहपुर पांडुलिपि (पद सूरदास जी का), जिसमें कबीर के मात्र पंद्रह पद संकलित हैं, को छोड़कर 'आदिग्रंथ' उनकी कविताई का सम्भवतः एकमात्र प्राचीनतम संकलन है जिसकी पुरानी और ज्ञात तिथियों वाली पांडुलिपियाँ भी उपलब्ध हैं। कबीरदास की परम्परागत निधन तिथि 1518 ई. के सौ वर्षों के भीतर संकलित होने के कारण 'आदिग्रंथ' (1604 ई. संकलन काल) में संग्रहित उनकी रचनाओं की प्रामाणिकता अन्य परवर्ती स्रोतों की अपेक्षा निर्विवाद है। पर जैसा कि हम देख चुके हैं, 'आदिग्रंथ' के संकलन के पीछे भी एक दीर्घकालीन प्रक्रिया रही है। तब एक स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि सिख साहित्यिक परम्परा में कबीर को कब समाहित किया गया?

एक मान्यता के अनुसार कबीर की रचनाओं को स्वयं गुरु नानकदेव ने सिख परम्परा में अंगीकृत किया। साक्ष्य स्वरूप बताया जाता है कि परवर्ती 'जनम साखियों' के अनुसार नानकदेव कबीर से मिल चुके थे तथा उनके प्रति श्रद्धा भी रखते थे। दूसरे, उनकी कविताई के स्वरूप एवं वैचारिक साम्य को भी इस संदर्भ में रेखांकित किया जाता है, जैसे कि गुरु के महत्व को दोनों इस प्रकार व्यक्त करते हैं :-

कहु नानक निसचौ धियावै ।

बिनु सतिगुर बाट न पावै ॥

- नानक देव

बिनु सतिगुर बाट न पाई ।

कछु कबीर समझाई ॥

– कबीर

किंतु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कबीर और गुरुनानक का मिलना असंगत प्रतीत होता है । दूसरे यह कि अपनी बानियों में नानकदेव ने शेख फरीद की तरह कबीर का नामोल्लेख भी नहीं किया है । 'आदिग्रंथ' में कबीर का प्रथम बार उल्लेख एवं उन पर टिप्पणी करने वाले सिख गुरु अमरदास थे 'नामा छीबा कबीरु जोलाहा पूरे गर ते गति पाई । तीसरे यह कि सिख साहित्य परम्परा में 'गोयंदवाल पोथी' में ही, जिसका निर्माण गुरु अमरदास के समय हुआ, सर्वप्रथम कबीर की रचनाओं को संकलित किए जाने के संकेत मिलते हैं । इस आधार पर कुछ लोगों का मानना है कि सिख साहित्य परम्परा में कबीर को तीसरे गुरु अमरदास के समय ही जगह मिली होगी ।

जो भी हो, कबीर की रचनाओं के विभिन्न स्रोतों- बीजक, सर्वांगियों, पंचवानियों आदि के मद्देनजर यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर की सभी रचनाओं को 'आदिग्रंथ' में जगह नहीं मिली है । गैर सिख परम्पराओं को यदि छोड़ भी दें तो स्वयं 'गोयंदवाल पोथी' में संकलित कुछ कबीर- बानियों को भी 'ग्रंथ' के संकलनकर्ता ने छोड़ दिया है । इसके अतिरिक्त 'करतार पुर वाली बीड़ में भी कबीर के चार पदों को मिटाए जाने के साक्ष्य मिलते हैं । अन्य संकलनों, यथा 'कबीर ग्रंथावली' तथा 'बीजक', जिनके आधार-स्रोत क्रमशः दादूपंथी और कबीर पंथी पांडुलिपियाँ हैं- से तुलना करने पर उनमें तथा 'आदिग्रंथ' में संकलित कबीर की रचनाओं में भेद और साम्य को बखूबी समझा जा सकता है । जाहिर है कि 'ग्रंथ' के संकलन के दौरान चयन की कुछ दृष्टियाँ कार्यरत थीं ।

#### आदिग्रंथ में कबीर वाणी के संकलन की प्रयोजनीयता

'आदिग्रंथ' के संदर्भ में एक प्रश्न अनायास ही उठता है कि जब यह सिख मत का अधिकारिक धर्मग्रंथ है तो कबीरदास सरीखे गैर सिख संत को इसमें समाहित करने के पीछे संकलनकर्ता के कौन-से उद्देश्य थे? आधुनिक युग में इसके निहितार्थों को समझने का प्रयत्न कई अध्येताओं ने किया है ।

एक मान्यता के अनुसार 'आदिग्रंथ' में कबीर वाणी के संकलन का आधार कबीर तथा सिख गुरुओं के विचारों, सिद्धांतों और शिक्षाओं में समानता है, जैसे- सार्वभौमिक-सार्वकालिक निर्गुण निराकार ब्रह्म की अवधारणा, जाति-सम्प्रदाय विरोध, वैयक्तिक रहस्यवादी साधना, सतगुरु में आस्था इत्यादि, जिससे सिख परम्परा की मानसिकता एवं उसकी उत्प्रेरणाओं को बल मिलता है । ऐसा अनुमान किया जाता है कि सम्भवतः इसी कारण कबीरदास की चयनित रचनाओं को ही 'ग्रंथ' में जगह मिली, जिससे उनके हवाले से सिख मत के सिद्धांतों को पुष्टि एवं प्रामाणिकता मिल सके ।

'आदिग्रंथ', 'अकाल परुख' की अवधारणा प्रतिपादित करता है तथा 'सतिनाम सुमिरन' इसकी उपासना के केंद्र में है । ईश्वरीय 'नाम' के सुमिरन का महत्व कबीरदास के यहाँ भी है । 'नाम जप' की महिमा बखानते हुए गुरु अर्जुनदेव कबीर सहित कई अन्य संत आत्माओं का उल्लेख करते हैं, जो नाम सुमिरन के माध्यम से 'उद्धार' पा गए:

सुणि सखी मन जपि पिआर । उधरिया कहि एक बार ।

कबीर धिआइओ एक रंग । नामदेव हरि जीउ बसहि संग ।

रविदास धिआए प्रभ अनूप । गुरु नानक देव गोविंद रूप ॥

सिख मत तथा कबीर दोनों ने ब्रह्म के विभिन्न नामों-राम, हरि गोविंद, निरंजन, अल्लाह, खुदा, रहीम आदि की महत्ता बताई है, जिनके सुमिरन से 'सहज' ही साधना की जा सकती है । जाहिर है कि उपासना-पद्धति के आलोक में कबीर सिख सिद्धांतों के निकट दिखाई देते हैं ।

वैचारिक धरातल पर साम्य का दूसरा स्तर जाति, धर्म, सम्प्रदाय के आधार पर मानवता मात्र के विभाजनों को नकारने में है। नानकदेव कहते हैं कि ईश्वर के द्वार पर जाति नहीं पूछी जाती : 'जाणहु जोति न पूछहु जाती आगे जाति न हे' तो कबीर के अनुसार सारे जीवों की उत्पत्ति 'ब्रह्म-बिंदु' से होती है, इसलिए जन्म-कुल अप्रासंगिक है :

गरभ वास महि कुलु नहीं जाती । ब्रह्म बिंदु ते सभ उतपाती ॥  
 कहु रे पंडित बामन कबके हुए । बामन कहि कहि जनमु मत खोए ॥  
 जौ तूं ब्राह्मणु ब्रह्मणी जाइआ तउ आन बाट काहे नहीं आइआ ॥  
 तुम कत ब्राह्मण हम कत सूद । हम कत लोहू तुम कत दूध ॥  
 कहु कबीर जो ब्रह्ममु बीचारै । सो ब्राह्मणु कहिअतु है हमारै ॥

इसी तरह वेद- कुरान के नकार, सतगुरु महिमा, वैयक्तिक रहस्यवाद इत्यादि के संदर्भ में भी विचारगत साम्य को रेखांकित किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि कबीर सरीखे कई अन्य गैर सिख संतों की बानियों के संकलन के बावजूद संकलनकर्ता ने 'आदिग्रंथ' की मूल विषय-वस्तु की निरंतरता का निर्वाह करते हुए सैद्धांतिक सामंजस्य बनाए रखने में सफलता पाई है।

**आदिग्रंथ में संकलित कबीर वाणी : विषय-वस्तु और दर्शन**

कबीर वाणी में कुछ इस प्रकार की अंतर्वस्तु और दर्शन दिखाये देते हैं। यहाँ हमारा मूल सरोकार 'आदिग्रंथ' में संकलित कबीर की रचनाओं से है। निर्गुणवादी वैचारिक विशिष्टताओं को धारण करते हुए भी कबीर की मौलिकता इसमें है कि उन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं अनुभूत सत्य के आलोक में अपने सिद्धांतों को दृढ़तापूर्वक अभिव्यक्ति दी है। उनके यहाँ अभिज्ञानात्मक अनुभूति का क्षण अचानक आता है—

कबीर सतिगुरु सूरमे बाहिआ बानु जु एकु ।

लागत ही भुइ गिरि परिआ परा करेजे छेकु ।

सतगुरु की कृपा हुई, उसने 'शब्द-बाण' मारा और साधक का कलेजा बिंध गया। इस अनुभूति के साथ ही सब कुछ बदल गया। जिस पर यह अनुकम्पा नहीं होती, उसका जीवन व्यर्थ चला जाता है: 'बारह बरस तो बालपन में बीत जाते हैं, बीस-तीस की अवस्था तक न तप होता है, न पूजा। जब वृद्ध हुए तब पछताने के सिवा बचता क्या है? मेरा-मेरा कहते जीवन गुजर जाता है और अंततः सारी शक्ति चूक जाती है। यह 'मेरा-मेरा' माया का वशीकरण है, जिसकी 'टाटी' 'ज्ञान की आँधी' से उड़ती है और तब आध्यात्मिक जागरण का क्षण आता है, जो जीव को बंधन मुक्त करता है।

कबीर का ब्रह्म सार्वभौमिक सबके हृदय का वासी है। इसलिए उसकी खोज अंततः अपने भीतर होनी चाहिए, जो शुद्ध अंतःकरण से ही सम्भव है। कबीर ने उसे बार-बार खोजा और पाया है: आत्मानुभूति प्राप्त की है। जब ब्रह्म अंतःवासी है तो उसे बाहर कैसे पा सकते हैं? जो ईश्वर को मंदिर-मस्जिद में देखते हैं। यदि वह मंदिर-मस्जिद में ही रहता है तो शेष जगह किसकी है—

अलहु एकु मसीति बसतु है अवरु मुलखु किसु केरा ।

हिंदू मूरति नाम निवासी दुहु महि ततु न हेरा ॥

कबीर के अनुसार मानव-मानव के बीच सारे कृत्रिम विभेद निःसार हैं। हरेक प्राणी उसी 'एक' की कृति है, उसी की छवि है। अतः सभी समान हैं। ईश्वर ने सबसे पहले ज्योति उत्पन्न की और सारी प्रकृति उसी से व्युत्पन्न है। जब सारे मनुष्य प्रकृति के ही अंग हैं तो उनमें बड़े-छोटे, अच्छे-बुरे का भेद कैसा —

अवलि अलह नुरु उपाइआ कुदरति के सभ बंदे ।

एक नूर ते सभु जगु उपजिआ कउन भले को मंदे ॥

मिट्टी तो एक ही है, पर सिरजनहार ने अनेक प्रकार के रूपाकार देकर सृष्टि की। इसमें न तो मिट्टी के बर्तन का दोष है और न सर्जक का। सृष्टा का सत्त्व तो सबमें बराबर मौजूद है।

### आदिग्रंथ में गैर सिख संत कवियों का योगदान

एक धर्मग्रंथ से ऊपर उठकर यदि देखें तब 'आदिग्रंथ' सही मायनों में 'अनेकता में एकता' का प्रतीक है जो क्षेत्र, जाति, व्यवसाय और साम्प्रदायिक आग्रहों से मुक्त एक खुलेपन का संदेश देता है। 'आदिग्रंथ' के समावेशी आदर्श को दो स्तरों पर स्पष्ट रूप से महसूस किया जा सकता है— संकलित संतों की पहचानगत विविधता तथा भाषायी विशिष्टता।

अपने एक पद में गुरु अर्जुनदेव संत प्रवृत्ति के विभिन्न लोगों का स्मरण पूरी श्रद्धा के साथ करते हैं :-

सुणि साखी मन जपि पिआर, अजागल उधरिया कहि एक बार।

धनै सेविआ बालबुधि, त्रिलोचन गुर मिलि भई सिधि।

जैदेव तिआगिओ अंहमेव, नाई उधारिओ सैनु सेव।

कबीरि धिआइओ एक रंग, नामदेव हरि जीउ बसहि संगि।

रविदास धियाए प्रभ अनूप, गुर नानक देव गोविंद रूप ॥

'आदिग्रंथ' में संकलित गैर सिख संत कवियों का संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है—

संत कवि	-	आदिग्रंथ में संकलित पद
जयदेव	-	2 पद
शेख फरीद	-	4 पद 112 श्लोक
त्रिलोचन	-	4 पद
बेनी	-	3 पद
नामदेव	-	61 पद, 2 श्लोक
रामानंद	-	1 पद
कबीर	-	228 पद, 243 श्लोक
रैदास	-	40 पद
सेन	-	1 पद
पीपा	-	1 पद
धन्ना	-	3 पद
भीखन	-	2 पद
मीराबाई	-	1 पद
सूरदास	-	1 पंक्ति
परमानंद	-	1 पद

ऐसा माना जाता है कि ये संत व्यापक स्तर पर भ्रमण करते थे, इसलिए इनकी भाषा में विभिन्न जनपदों के भाषायी तत्व अनायास ही आते गए। इन संतों की बानियों के माध्यम से ये तत्व आदिग्रंथ में भी समाहित किये गए। अतः गुरुमुखी लिपि में संकलित होने के बावजूद 'आदिग्रंथ' की भाषा, समावेशिता का आदर्श प्रस्तुत करती है, जिसमें पंजाबी, मराठी, गुजराती, पूर्वी भारत की बोलियों आदि से भी शब्द ग्रहण किए गए हैं। इस प्रकार, मध्यकालीन भक्ति आंदोलन समस्त मतांतरों के ऊपर मनुष्यता के



स्तर पर विभिन्न परंपराओं के बीच जिस संवाद का प्रतिफल था, उसी का परिणाम 'आदिग्रंथ' में व्याप्त है, जो भारतीय समाज के धार्मिक बहुलतावाद का प्रमाण है।

### सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- श्याम सुंदर दास : सं. कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा
- डॉ. माताप्रसाद गुप्त : सं. कबीर ग्रंथावली, साहित्य भवन (प्रा.) लिमिटेड – इलाहाबाद
- पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी : कबीर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण – सन् 1985
- पं. परशुराम चतुर्वेदी : कबीर साहित्य की परख भारती भंडार – प्रयाग, संस्करण-सं. 2011 (सन् 1954)
- डॉ. केदारनाथ द्विवेदी : कबीर और कबीर पंथ, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
- डॉ. पारसनाथ तिवारी : कबीर वाणी- सुधा, राका प्रकाशन इलाहाबाद
- डॉ. रामचंद्र तिवारी : कबीर मीमांसा, लोक भारती प्रकाशन – इलाहाबाद
- डॉ. धर्मवीर : कबीर के आलोचक, वाणी प्रकाशन – नई दिल्ली
- पीताम्बर दत्त बड़थवाल, हिंदी काव्य की निर्गुण धारा : अनु. एवं सं. परशुराम चतुर्वेदी, भगीरथ मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
- डॉ. राजदेव सिंह, संत साहित्य की भूमिका : लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

## 21 वीं सदी के नए विमर्श में वृद्ध विमर्श

Dr. Rekha  
Department of Hindi  
Maharani Arts College For Women  
Dis: Mysuru State: Karnataka  
Ph: 6360997286: 9742962211

21 वीं सदी के उपन्यास दर्पण है विविध आयाम का। प्रस्तुत सदी में समाज एवं परिवार में अनेक विमर्शों को चित्रित किया गया है, जैसे- स्त्री विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, आदिवासी विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, बाल विमर्श तथा अल्पसंख्यक विमर्श आदि। प्रस्तुत आलेख में वृद्ध विमर्श को आधार बनाया गया है। साहित्य में वही चित्रित होता है जो समाज में घटित हो रहा है। आज-कल वृद्धाश्रमों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो रही है। जिसका प्रमुख कारण आज की भागदौड़ भरी जीवन शैली तथा एक पीढ़ी के दूसरी पीढ़ी से विचारों का तालमेल न बैठना है। अधिकतर परिवार में वृद्धों की हालत बहुत दयनीय है। उनके पास यदि पैसे हैं तो ही उनको स्थान, मान मिलता है, अन्यथा संतान पर वह बोझ बन जाते हैं। आज की संतान पैसों से अमीर तथा प्रेम से गरीब है। उनके पास अपने माता-पिता को देने के लिये कुछ भी प्रम नहीं है। 21 वीं सदी के अनेक उपन्यासों में वृद्धों की दयनीय दशा का वर्णन है। जिसका वर्णन अग्रलिखित उपन्यासों में देखने को मिलता है।

'भगदड़' उपन्यास में महावीर प्रसाद तथा उनकी पत्नी ने अपने बेटे को पढ़ाया लिखाया। मगर बेटे को मुंबई के चकचौंध ने अपनी ओर इस प्रकार आकर्षित कर लिया कि वह मुंबई का ही बन कर रह गया। जब बेटे से मिलने दंपति बेटे के घर आते हैं तो उस समय पुत्र के घर में ही स्वयं को मेहमान जैसा अनुभव करते हैं। अपने बेटे के घर दोनों पति-पत्नी को अपनी बहू द्वारा वैसा स्नेह नहीं मिला जैसे आम परिवार में मिलता है जैसे- "दरवाजा बहू ने खोला था। उन दोनों को देखकर एक मुस्कुराहट बिखेरी उसने और फिर सामान की ओर नजर घुमाई।"<sup>1</sup> पोती भी दादा-दादी को मेहमान नाम से संबोधित करती। महावीरप्रसाद ने इसका अंदाजा लगा लिया कि उनका आना बहू श्वेता को अच्छा नहीं लगा था। कृष्णा अपने माता-पिता से बहुत प्रेम करता था। किंतु उसके एक गलत निर्णय के कारण उसे जीवनभर पछताने के अलावा और कोई रास्ता नहीं था। जैसे ही श्वेता को पता चलता है कि ससुर को कैंसर होने की आशंका है वह मौन हो जाती है। इधर श्वेता सामने के कमरे में आई और उसने एक झटके में हर्षा को उठा लिया। कृष्णा की माँ से उसका यह व्यवहार छिपा नहीं रहा। बाबूजी भी विचलित हुए।<sup>2</sup> कृष्णा की माँ के लिए उनके घर में मौजूद कुछ चीजें नई थी। उसी वक्त वह अपना कुतुहल का समाधान करने के लिए उसका दाम पूछ लेती है। श्वेता फ्रिज लेने की इच्छा प्रकट करते हुए कहती है- "नौ हजार में तुरंत रकम बताकर श्वेता अचकचायी। फिर संवारते बोली अगली बार के फेस्टिवल एडवांस में कुछ रकम जोड़कर ले लूंगी।"<sup>3</sup> जब कृष्णा की माँ ने अपने मन की बात कही कि अपने पति से बात करके पैसों की व्यवस्था करेगी, क्योंकि पैसों से भी अधिक महत्व परिवार का सुख है तो "श्वेता पलटकर बोली नहीं... नहीं... रहने दीजिए। किसी तरह हम कर लेंगे। श्वेता का यह वाक्य फिर पराये पन की तोप दाग गया। टुकड़े-टुकड़े हो गई कृष्णा की माँ फिर शांत और गुमसुम।"<sup>4</sup> महावीर प्रसाद यह सब अनुभव कर रहे थे किंतु वे मौन थे। उन्होंने बेटे की सारी मनोदशा को आंका था। किंतु श्वेता पैसे एवं अपनी सुख-सुविधा के पीछे भाग रही थी। अपनी माँ की सलाह के अनुसार उसने दोनों को घर का काम करवाने के उद्देश्य से मुंबई रहने के लिए बुलाया था महावीर प्रसाद की पत्नी नौकरानी की तरह घर का सारा काम करने लगी थी। "महावीर प्रसाद की नजर जौहरी की तरह थी। वह आदमी को देखते ही उसके दिमाग का हालचाल नाप सकते थे।"<sup>5</sup> श्वेता की माँ का भी सच उनके

सामने आया। उनको पता चला कि उन्हें वहाँ पर बुलाने का कारण स्नेह या प्रेम नहीं बल्कि पैसा था। अपनी पत्नी को घर का सारा काम करती देख दुःखी होकर उन्होंने वापस जाने का निर्णय लिया। “महावीर प्रसाद को अप्रत्यक्षतः यह समझते देर नहीं लगी कि उन्हें क्यों इतनी आत्मीयता से बुलाया गया है। इस साजिश से उन्हें चिढ़ हुई। कृष्णा को भी शायद यह पता नहीं होगा।”<sup>6</sup> हर बहू को अपनी सास-ससुर प्यारे नहीं होते किंतु वह सदैव यह कामना अवश्य करती है कि उसके माता-पिता को खुश रखने वाली लड़की भाई की दुल्हन बने।

‘कुड़ियाँजान’ उपन्यास में वृद्ध विमर्श अनेक स्थान पर चित्रित है जैसे उपन्यास का एक पात्र है शकरआरा। वह पढ़ी-लिखी होने के बावजूद भी अपनी सास को नहीं समझ पाई। जमाल खा की माँ एक सरल व्यक्तित्ववाली महिला थी। उसने अपनी बहू को गलत नहीं कहा, सदैव परिस्थिति के अनुरूप स्वयं को बदलती आई और परिवार में कभी बेटे और बहू को अलग करने का प्रयास नहीं किया। “शकरआरा की अपनी सास से नहीं पटी थी। ऐसा कोई दिन नहीं था जब सास-बहू में तकरार न होती हो। माँ के खत आने पर भी मियाँ-बीबी में तलखी हो जाती थी।”<sup>7</sup> जमाल खाँ को अपनी माँ के लिए बहुत बुरा लगता। किंतु वह शांत इसलिए रहते क्योंकि उनकी माँ ने उनसे यह वचन लिया था की परिवार में बच्चों के लिए जमाल खाँ अपनी पत्नी को कभी नहीं छोड़ेगा। वह हमेशा अतीत में माँ के वादे याद करते। “अम्मा की खामोशी दिन-ब-दिन गहरी होती चली गई। यहां तक कि बच्चों को उनके पास जाने की मनाही पर भी उन्होंने जबान नहीं खोली। वह शकरआरा को खुला मैदान देकर एक किनारे हट गई थी कि खेलो, जी भरकर खेलो। मुझे अपने बेटे की गृहस्थी नहीं उजाड़नी।”<sup>8</sup> बेटे से माँ को अपनी बीबी को तलाक देने की बात सुनकर वह वृद्ध महिला अपने सारे दर्द छुपाकर बेटे के सामने खुश रहने का नाटक करती है। शादी के बहाने जो वह एक बार गाँव गई तो वापिस कभी नहीं आयी। उसकी अंतिम इच्छा थी कि उसे गाँव में ही दफनाया जाए।

इसी उपन्यास में बहू द्वारा अपने ससुर पर किए जाने वाले शोषण का वर्णन है। बहू से बेटा अपने पिता के खान-पान की व्यवस्था करने को कहकर खुद काम पर चला जाता, उसे लगता कि पत्नी पिता का अच्छे से खयाल रखती है। मगर एक दिन डॉक्टर के कहने पर कि खाने की कमी के कारण पिता मर भी सकते हैं। उसने खुद पता लगाना चाहा कि आखिर ऐसा क्यों हुआ। बहू अपने ससुर से कहती है – “अरे कउन-सा रोग लग गया है जो डॉक्टर की फीस मा पैसा बहाया रहा है बूढ़ा, अब कहत है बासी न खाबे, डॉक्टर मना किए है। तो रहो भूखा हमार का जात है।”<sup>9</sup> उस वृद्ध को बहू बासी रोटी खिलाती और खुद ताजा आहार खाती। सच्चाई से अवगत होकर बेटा गुस्से से खौल उठाता है। स्वयं जाकर गरम दूध का कुल्हड़ पिता के हाथ में थमाते हुए बोला “ग्वाले को कल से दूध लाने के लिए मना कर देना, पिताजी खुद जाकर दूध पी लेंगे। हिसाब महीने-महीने में करूंगा और अगर तुम्हें ताजी रोटी डालने में आलकस होती है तो उसका भी बंदोबस्त हो जाएगा।”<sup>10</sup> औरत का चेहरा अपमान से लजित हो गया। क्योंकि उसकी करनी अब पति के सामने थी और अपने बचाव के लिए उसके पास शब्द नहीं थे। उसकी आंखों में पश्चाताप का पानी था। “वह बुरी औरत नहीं थी, मगर जिस समाज में बूढ़े बोझ समझे जाने लगे हों, उन्हें बेकार की वस्तु समझकर एक किनारे डालने का चलन बढ़ रहा हो, वहाँ पर यह औरत सबसे अलग क्यों व्यवहार करेगी?”<sup>11</sup>

‘गिलिगडु’ उपन्यास में दो वृद्ध बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी का वर्णन मिलता है। दोनों विदुर थे पत्नी की देहांत ने उन्हें भीतर से अकेला कर दिया था। जसवंत सिंह अपने गांव में ही भले चंगे थे। पत्नी के मरणोपरांत वह परिवार वाले एवं समाज वालों की सलाह के कारण अपने बेटे के पास दिल्ली आने के लिए मजबूर हो जाते हैं। बहू सुनयना को बाबू जसवंत सिंह का घर आना उतना अच्छा नहीं लगा था। बाबू जसवंत सिंह का मानना था कि बहू को जितना खयाल पलतू कुत्ता टॉमी का है, उसमें थोड़ा भी अपने ससुर के लिए नहीं है। जब कभी वे समाचार लगाते तो टॉमी की गुर्राहट बढ़ती जाती। “बहू सुनयना को टॉमी की नाराजगी बरदाश्त न होती। दखल देती हुई उन्हें टोकती- कोई म्यूजिक चैनल लगा दीजिए न बाबूजी। आज तक का क्या है,

चौबीसों घंटे चलता ही रहता है।<sup>12</sup> बाबू जसवंत सिंह को अपने बेटे के घर में इतना भी स्वतंत्रता नहीं थी कि उनकी सहायता करने वाले व्यक्ति को अपने घर चाय पर बुला सके। “कानपुर से दिल्ली आए हुए उन्हें अरसा हो गया था। घर की चौखट में दाखिल होते ही वे स्वयं को अपरिचितों की भांति प्रवेश करता हुआ अनुभव करते हैं।<sup>13</sup> जसवंत सिंह को बवासीर की बीमारी थी। वे उसी कारण ज्यादा परेशान रहते थे। जब उनकी पत्नी जिन्दा थी तब नौकरानी सुनगुनिया उनका अच्छे से खयाल रखा करती, किंतु इसे ही आशंका की दृष्टि से देखा गया। उनके और नौकरानी के बीच अनैतिक संबंध की भी कड़ी को जोड़ा गया। मगर वे सुनगुनिया को बेटी की तरह मानते थे। उनकी अपनी एक आहार पद्धति थी। सुबह के समय नींबू वाली चाय और दोपहर को दलिया खाना पसंद था उन्हें। जब तक अपने गाँव में रहे तब तक सुनगुनिया ने उनके आहार पद्धति को वैसे ही बरकरार रखा था। जब वह अपने बेटे के घर आये तब बहू द्वारा कोई न कोई बहाना बनाकर आहार पद्धति को टाल दिया गया। “दिल्ली आने के हफ्ते भर बाद बाबू जसवंत सिंह को लगा था कि उन्हें नरेन्द्र से अपनी आपत्ति प्रकट कर देनी चाहिए। खाने में कुछ भी खाना उनके लिए संभव नहीं था। फ्रीज में रखा बासी-कूसी उसकी अम्मा ने कभी कुछ उन्हें नहीं खिलाया, सो पेट को उसकी आदत नहीं।<sup>14</sup> इस बात पर बिगड़े नरेन्द्र ने अपने पिता को लंबा-चौड़ा भाषण देते हुए कहा “आइंदा वे अपनी पसंद की गुंजाइश इस घर में न ढूँढे तो बेहतर है।<sup>15</sup> इससे वे भीतर तक आहत हो गए थे। उनके साथ एक घटना ऐसी घटी जिसके बारे में उन्होंने कभी सोचा न था। बवासीर के कारण उन्हें अपने पाइजामा में खून के धब्बे दिखे, जिसे वे ठीक कर रहे थे, और सामने वाली खिड़की से पड़ोसन ने देखकर गलत मतलब निकाला। इस पर घर आकर पड़ोसन द्वारा आरोप लगाने पर “बहू सुनयना अपने पिता से इतनी कठोर हो सकती थी! संवाद के लिए कोई गुंजाइश नहीं सीधे-फैसला? घूमते सिर को तकिए में गड़ा बच्चों-से फूट-फूटकर रो पड़े। हिचकियों से लोहे का पलंग थरने लगा।<sup>16</sup> उस स्थान पर सुनयना के पिता होते तो उनके लिए पुरी दुनिया से लड़ जाती वह। किंतु एक बार भी उस ससुर से यह नहीं पूछा गया कि यथर्थ क्या है? क्यों यह आरोप उन पर आया? वृद्ध के बचाव में न ही बहू ने कुछ कहा और न ही बेटे ने। दोनों ने एक अंजान व्यक्ति की उक्ति को सत्य सिद्ध करके वृद्ध पर ही कटु वाणी का प्रहार करते रहें। उनके दृष्टि में बाबू जसवंत सिंह घर में कूड़े की तरह थे, जिसे हमेशा घर एक कोने में पड़ा रहना चाहिए। वे सिर्फ पैसों के भूखे थे। मानवीयता उनमें थी नहीं। उतने बड़े घर में पिता को रहने के लिए एक कमरा तक नहीं था, उन्हे हाल में ही सोना पड़ता किंतु बच्चों के सामान रखने के लिए एक अलग कमरे की व्यवस्था घर में थी। ऐसे में बवासीर से पीडित व्यक्ति क्या करता कहाँ अपने पाइजामे के खून के धब्बे को साफ करता? दोनो सुशिक्षित तो थे किंतु सोचने की क्षमता दोनों में नहीं थी। पोते भी बाबू जसवंत सिंह से नजदीकी नहीं बढा सके। उनके लिए वह अपने पिता के पिता थे अतिरिक्त इसके और कुछ नहीं। यह दाईत्व माता-पिता का होता है कि अपने बच्चों को दादा-दादी के संबंध से परिचित कराए। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है की संबंध में केवल दादा- दादी को ही पराए होने का आभास होता है। नाना-नानी को हमेशा अपने पोता-पोती का प्यार पूर्ण रूप से मिलता है। हर एक बहू का कर्तव्य है कि उसे सास-ससुर को माता पिता का स्थान भले ही न दे किंतु मानवीय मूल्यों को कभी भुलना नहीं चाहिए।

उसी प्रकार कर्नल स्वामी का भी परिवार था फिर भी बहुत सालों से अकेले रहते थे। परंतु कभी अपना दुःख दूसरों के सामने न बताते। ऐसे में कर्नल की दोस्ती बाबू जसवंत सिंह से होती है। “कर्नल स्वामी ने उन्हें अपने भरे-पूरे परिवार से परिचित कराया था, पत्नी नहीं है। तीन बेटे हैं, तीन बहुएँ हैं।<sup>17</sup> दोस्तों के सामने अपने आपको संसार का सुखी व्यक्ति के रूप में दिखाने वाले कर्नल स्वामी केवल भ्रम में जीवन जी रहे थे। भरे-पूरे परिवार के होते हुए भी उनके लिए कोई नहीं था नितांत एकांत के अलावा। अपने दोस्तों से अपनी बहुओं के तारीफ करते पोतियों का उल्लेख करते। किस प्रकार पोतियाँ उनके साथ खेलती हैं इसका वर्णन करते। जो भी उनसे मिलता यह सोचता कि कर्नल स्वामी तो भाग्यशाली है, जिसे एक संपन्न परिवार में रहने का भाग्य प्राप्त है। किंतु सत्य इससे विपरीत था। अपनी संपत्ति न देने के लिए उन्हें बच्चों से मार खाकर लहूलुहान भी होना पड़ा था। बेटों

को पिता की संपत्ति में हिस्सा चाहिए था जिसे पा कर वह अपनी अलग दुनिया बसाना चाहते थे, किंतु उस अलग दुनिया में दूर-दूर तक पिता के लिए कोई स्थान नहीं था। उनके जीवन में बहुत दुःख था, किंतु हमेशा मुख पर हर्ष की भावना रखने वाले कर्नल स्वामी दूसरों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनते। अकेले रहते, अकेले जीवन व्यतीत करते और एक दिन हृदयाघात के कारण वह दुनिया के झंजट से मुक्ति तो पा लेते हैं, परंतु आत्मा को मुक्ति देने के लिए उनकी संतान सही समय पर नहीं पहुँच पाती। उनके पडोसियों से कर्नल स्वामी की कहानी जानकर बाबू जसवंत सिंह को तीव्र आघात होता है, साथ ही उनकी संतानों पर क्रोध प्रकट करते हुए वह कहते हैं- “ऐसी औलादों से तो निपूत भला।”<sup>18</sup>

यह केवल उपन्यास में आने वाले पात्र नहीं है। यह पात्र हमारे समाज में हमारे घर में भी उपस्थित है। बेटे के शादी के बाद परिवार में बहुत कुछ बदल जाता है। किंतु उस बदलाव में माता-पिता को कभी अनदेखा कर दिया जा रहा है। उन्हें निरपयुक्त वस्तु के रूप में देखा जाता है। एक घर जिसे अपने खून पसीने से बनाकर अपनी पूरी उम्र बिता देते हैं, बच्चों की खूशी के लिए पूरा जीवन संघर्ष करते हैं, फिर एक दिन अपने ही घर में पराए होने का अनुभव करते हैं। आजकल शीघ्रता से वृद्धाश्रम में बढ़ोतरी हो रही है। जब संतान मासूम होती है तब माता-पिता संतान की हर गलती को क्षमा कर देते हैं। परंतु संतान वृद्ध माता-पिता की छोटी सी गलती पर उन्हे घर से ही बाहर निकाल देती हैं। 21 वीं सदी के अनेक उपन्यास हैं जिसमें वृद्धों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया गया है। यदि हर संतान अपने दायित्व के प्रति समर्पित हो तथा वृद्ध माता-पिता के प्रति सम्मान का भाव रखकर उनकी देखभाल करें करें तो संसार में सभी परिवार सुख, समृद्धि से पूर्ण हो जाए तथा कोई वृद्धाश्रम न बनें और वृद्धाश्रम बने तो केवल उनके लिए ही सीमित हो जो वृद्ध अकेले हैं अथवा जिनका इस संसार में कोई कोई नहीं है। उपरोक्त आलेख द्वारा वृद्धों के कठोर जीवन एवं परिवार एवं समाज में उनकी दयनीय स्थिति को साहित्य के माध्यम से उजागर किया गया है।

### सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ दामोदर खड़से – भगदड़, पृ 11
2. वही, पृ 21
3. वही, पृ 31
4. वही, पृ 31
5. वही, 63
6. वही, पृ 64 –
7. नासिरा शर्मा – कुड़ियाँजान, पृ 118
8. वही, पृ 226
9. वही, पृ 170
10. वही, पृ 171
11. वही, पृ 171
12. चित्रा मुद्गल – गिलिगडु, पृ 11
13. वही, पृ 14
14. वही, पृ 39
15. वही, पृ 40

16. वही, पृ 60
17. वही, पृ 23
18. वही, पृ 138

**आधार ग्रंथ सूची :**

- भगदड़ भावना प्रकाशन 2015  
कुइयाँजान सामयिक प्रकाशन 2017  
गिलिगडु सामयिक प्रकाशन 2019

## कहानी 'उसने कहा था' में कथित प्रेम तत्त्व की संदिग्धता

डॉ. सम्राट सुधा

बी. एस. एम. पी. जी. कॉलेज, रुड़की, पिन -247667, उत्तराखंड

मोबाइल नंबर : 9412956361

ई-मेल : samratsudha66@gmail.com

### शोध सारांश :

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' को प्रेमकथा कहना उचित नहीं है। वस्तुतः 'उसने कहा था' मात्र नायक लहनासिंह के बचपन में सम्पर्क में आयी और जवानी में अनायास रूप से मिली सूबेदारनी के प्रति एकपक्षीय 'प्रेम' की कहानी है, जिसे इस कथा के संबंध में तार्किक विश्लेषण से सहज ही समझा जा सकता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' को हिन्दी प्रेमकथाओं में एक अनुपम प्रेमकथा की मान्यता मिली है। वर्ष 1915 में 'सरस्वती' के जूनांक में प्रकाशित यह कहानी उस समय अपने कथ्य और शिल्प की दृष्टि से अभिनव मानी गयी थी, यद्यपि बंगला कथा-साहित्य में ऐसी कथावस्तुएँ तब तक पर्याप्त चर्चित हो चुकी थीं।

विचारणीय बात यह है कि 'उसने कहा था' क्या वास्तव में प्रेम की एक अमर कथा है या यह लहनासिंह के एकतरफा सच्चे प्यार और सूबेदारनी द्वारा उसे 'कैश' करने की दुःखद कथा मात्र है! कथ्य और शिल्प की दृष्टि से 'उसने कहा था' कितनी सशक्त है, इसे कतिप्रय अलोचकों के दृष्टिकोण से जान लेना समीचीन ही होगा।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'उसने कहा था' के संदर्भ में लिखा है- "संस्कृत के प्रकाण्ड प्रतिभाशाली विद्वान् हिन्दी के अनन्य आराधक श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की अद्वितीय कहानी 'उसने कहा था' सं. 1972 अर्थात् सन् 1915 की 'सरस्वती' में छपी थी। इसमें पक्के यथार्थवाद के बीच, सुरुचि की चरम मर्यादा के भीतर, भावुकता का चरम उत्कर्ष अत्यन्त निपुणता के साथ संपुटित है। घटना इसकी ऐसी है, जैसी बराबर हुआ करती है; पर उसके भीतर से प्रेम का एक स्वर्गीय स्वरूप झाँक रहा है-केवल झाँक रहा है, निर्लज्जता के साथ पुकार या कराह नहीं रहा है। कहानी भर में कहीं प्रेम की निर्लज्ज प्रगल्भता, वेदना की वीभत्स विधृति नहीं है। सुरुच के सुकुमार से सुकुमार स्वरूप पर कहीं आघात नहीं पहुँचता। इसकी घटनाएँ ही बोल रही हैं, पात्रों के बोलने की अपेक्षा नहीं।"<sup>1</sup>

सुशील कुमार फुल्ल 'उसने कहा था' सहित गुलेरी जी की अन्य पाँच कहानियों पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं-"गुलेरी जी कहानीकार नहीं थे और न ही कवि, इस आशय का प्रत्यक्ष संकेत उनके (आत्मकथ्य) में मिलता है। आचार्य शुक्ल ने 'उसने कहा था' को 'अद्वितीय' कहकर परवर्ती विद्वानों के लिए एक लीक बना दी, जिसे आज तक निरन्तर दोहराया जाता रहा है, परन्तु वास्तविकता यह है कि उनकी कहानियाँ समग्र रूप से देखे जाने पर कथ्य तथा कलात्मकता दोनों ही दृष्टियों से छोटी पड़ जाती हैं। आलोचकों ने जो आदर्श उनकी कहानियों पर आरोपित किये हैं, कहानियों का अवलोकन करते ही वे भुर-भुराकर बिखर जाते हैं। आलोचकों ने गुलेरी जी की रचनाओं को खूँटी समझकर, अपनी मान्यताएँ टाँगकर, उन्हें अमर कहानीकार घोषित कर दिया है। व्यक्ति गुलेरी को क्षणभर के लिए भुलाकर यदि उनकी कहानियों का परीक्षण करें, तो रचनात्मक कमजोरियाँ, अनावश्यक है-विस्तार, संयोजन की शिथिलता तथा रोमांस की ललक एवं मांसल चित्रण का मोह एकाएक स्पष्ट हो उठता है।"<sup>3</sup>

बचनसिंह इस कहानी पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं- “वस्तुतः यह कहानी (उसने कहा था) सोमनाथ के मन्दिर की मूर्ति की तरह आकाश में लटकी हुई प्रतीत होती है। यदि भावुकता का चुम्बक हटा लिया जाए, तो मूर्ति धरती पर खण्ड-खण्ड हो जाएगी। समीक्षकों ने उसकी भावुकता को ही विशेषता के रूप में ग्रहण कर लिया, क्योंकि वे स्वयं भावुक थे।”<sup>4</sup>

इस कहानी के कलेवर पर टिप्पणी करते हुए नन्दुलारे वाजपेयी लिखते हैं- “गुलेरी जी की ‘उसने कहा था’ कहानी बहुत लंबी ही है अधिक स्थान और समय घेरती है और कहानी के नवीन प्रतिमानों को देखते हुए विराट या महाकाव्यात्मक कहानी (एपिक स्टोरी) कही जा सकती है। लम्बी कहानियाँ प्रसादजी ने भी लिखी हैं और प्रेमचन्द जी ने भी। इन दोनों की कहानियों में ‘उसने कहा था’ की-सी बोझिल विशालता नहीं है।”<sup>5</sup>

वहीं जैनेन्द्र कुमार का यह कथन द्रष्टव्य है- “गुलेरी जी विलक्षण विद्वान् थे... गुलेरी जी न केवल विद्वता में अपने समकालीन साहित्यकारों से ऊँचे ठहरते हैं, अपितु एक दृष्टि से वह प्रेमचन्द से भी ऊँचे साहित्यकार हैं। प्रेमचन्द ने समसामयिक स्थितियों का चित्रण तो बहुत बढ़िया किया है, पर व्यक्ति मानस के चितरे के रूप में गुलेरी का जोड़ नहीं है। प्रेमचन्द अपने साहित्य में सामाजिक सम्बन्धों के चित्रण से आगे नहीं बढ़े, जबकि गुलेरी ने ‘उसने कहा था’ में ही मानवतावाद की आत्मा का स्पर्श कर लिया है।”<sup>6</sup>

प्रश्न ‘उसने कहा था’ के ‘प्रेममय’ कथानक का है। इस कहानी में जब लड़का (लहनासिंह) और लड़की (बाद में सूबेदारनी) मिलते हैं, तो उनकी आयु क्रमशः बारह और आठ वर्ष होती है। कहानी का यह अंश द्रष्टव्य है- “लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्जी वाले के यहाँ, हर कहीं उसे आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है कि तेरी कुड़माई हो गयी? तब ‘धत्’ कहकर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा-‘हाँ, कल हो गयी। देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला शालू?’ सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ?”

ऊपर उद्धृत कथा-संवाद से यह मान लेना कि उस आठ साल की लड़की से बारह साल के लड़के लहनासिंह को सचमुच ‘गम्भीर प्रेम’ हो गया था, भला कितना उचित है? कहानी में आगे स्वयं इसका उत्तर मिलता है- “पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं. 77 राइफल में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी या नहीं।” परन्तु पच्चीस वर्ष पश्चात् भी उस लड़की (जो अब सूबेदारनी है) की स्मरणशक्ति की प्रशंसा करनी पड़ेगी कि अपने पति (सूबेदार) के साथ आये लहनासिंह को वह तुरन्त पहचान लेती है; साथ ही अपने पति को उससे मिलने की इच्छा भी जता देती है- “सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। जब चलने लगे, तब सूबेदार बेड़े में से निकलकर आया। बोला-लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है। बुलाती है। जा मिल आ।” पच्चीस वर्ष बाद यूँ अपने से चार बड़े लहनासिंह को सूबेदारनी द्वारा पहचान लेना अत्यन्त अस्वाभाविक है, परन्तु उसके द्वारा लहनासिंह को पच्चीस वर्ष पूर्व का स्मरण कराना नारी-मनोविज्ञान के एक और पक्ष को उद्घाटित करता है-

“मुझे पहचाना?”

“नहीं।”

“तेरी कुड़माई हो गयी?—धत्—कल हो गयी... देखते नहीं रेशमी बूँटों वाला शालू— अमृतसर में।”

विचारणीय बात यह है कि पच्चीस वर्ष पश्चात् सूबेदारनी लहनासिंह को पहचान तो भली-भाँति लेती है, उसे स्वयं को पहचानने के लिए नितान्त भावुकतापूर्ण संवाद में शब्दशः स्मरण भी करा देती है, परन्तु वह न तो लहनासिंह का औपचारिक कुशलक्षेम ही पूछती है और न ही उसके परिवार आदि का हालचाल! वास्तविकता यह है कि मनुष्य जब अपने किसी बड़े स्वार्थ को लेकर दूसरे से मिलता है, तो दूसरे की पीड़ा या समग्रतः दूसरे का जीवन उसके लिए कोई अर्थ नहीं रखता है। सूबेदारनी का मंतव्य



उस समय पूर्णतः उद्धाटित हो जाता है, जब लहनासिंह को पच्चीस वर्ष पूर्व की बातों का स्मरण कराती हुई वह विशुद्ध स्वार्थमय वादा उससे अवचेतन रूप से करा लेती है- "मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमकहलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों की एक घंघरिया पलटन क्यों न बना दी, जो में भी सूबेदारजी के साथ चली जाती? एक बेटा है। फ़ौज में भरती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार हुए, पर एक भी नहीं जिया (सूबेदारनी रोने लगती है)। मेरे भाग। तुम्हें याद है, एक दिन तांगे वाले का घोड़ा दहीं वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़ों की लातों में चले गये थे और मुझे उठाकर तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।" कहानी 'उसने कहा था' का ऊपर उद्धृत संवाद सूबेदारनी के हृदय से समस्त भावों को गहनता से उद्धाटित करता है। उक्त संवाद के आधार पर देखें तो सूबेदारनी को अपने पति और पुत्र की; यहाँ तक कि अंग्रेज सरकार के प्रति 'नमकहलाली' तक की चिन्ता है, परन्तु लहनासिंह के प्रति कोई संवेदनशीलता नहीं है। सूबेदारनी का अब अपना परिवार है, पति की बहादुरी से प्रसन्न हो सरकार ने जमीन दी, तो सूबेदारनी के हृदय में नमकहलाली हिलोर लेने लगी, परन्तु बचपन में तांगे के नीचे आने से बचाने वाले लहनासिंह के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना तो दूर, उससे अपने पति और पुत्र की जीवन-रक्षा की 'भिक्षा' ही माँग ली! अपने प्राण बचाने का स्मरण दिलाकर सूबेदारनी 'ऐसे ही इन दोनों को बचाना', कहकर 'ऐसे ही' के माध्यम से यह प्रच्छन्न रूप से कह देती है कि भले ही अपने प्राण देकर करना, परन्तु मेरे पति और पुत्र की रक्षा करना!! इस प्रकार बचपन की यदा-कदा होने वाली भेंटों के पच्चीस वर्ष पश्चात् सूबेदारनी को लहनासिंह और उसके द्वारा स्वयं को बचाया जाना तो ध्यान रहता है, परन्तु उसकी 'भिक्षा' से यह स्पष्ट हो जाता है कि लहनासिंह के प्रति न तो उसकी कोई संवेदना पच्चीस वर्ष पूर्व थी और न ही वर्तमान में अब, जब वह युद्ध में जाते लहनासिंह से अपने पति व पुत्र की रक्षा की बात, बिना उसके प्रति कोई चिन्ता व्यक्त किये, कह देती है।

विश्वविख्यात फ्रेंच लेखिका सिमोन द बोउवार लिखती हैं "पुरुषों से अधिक स्त्रियाँ बचपन की यादों को संजोये रखती हैं। बचपन में मैं माता-पिता के संरक्षण में स्वतंत्र थी, यह उन्हें याद रहता है। भविष्य उनके सम्मुख होता है। वे अपने को अधिक सुरक्षित नहीं समझती। वे अनुचर व वस्तु-रूप में वर्तमान में बन्दी होती हैं। एक समय वे विश्व को विजित करना चाहती थी, पर अब वे आम वस्तु के रूप में बदल गयी हैं। अरबों पत्नियों और घर सम्भालने वाली गृहिणियों में से वे भी अब एक होती हैं।"

सीमोन द बोउवार के उपर्युक्त कथन से सूबेदारनी (एक आम स्त्री) के मनोभावों का कारण तो स्पष्ट होता है, परन्तु इससे कहीं भी उसकी छवि एक प्रेममयी स्त्री के रूप में नहीं उभरती है। कहानी में क्या यह अधिक सुखद नहीं होता कि सूबेदारनी लहनासिंह से मिलने पर उसे बचपन की बातों का स्मरण तो कराती, परन्तु युद्ध में जाते, कभी अपने प्राणों की रक्षा करने वाले, उस निश्छल प्रेमी से यह वादा भी करा लेती कि तुम्हें इस युद्ध में जी-जान से लड़कर भी मेरे लिए जीवित वापिस आना है! युद्ध में यद्यपि कौन मरेगा और कौन बचा रहेगा, यह भला कौन कह सकता है, तथापि सूबेदारनी द्वारा लहनासिंह को बचपन की बातों का भावुकतापूर्ण स्मरण कराकर जैसे उसके प्राणों को बचाया था, 'ऐसे ही' अपने पति और पुत्र के जीवन की रक्षा की 'भिक्षा' माँगना क्या सूबेदारनी का घोर स्वार्थमय और कुटिल होना प्रमाणित नहीं करता है?

दूसरी ओर लहनासिंह सूबेदारनी की 'भिक्षा' को पूर्ण करने के लिए आत्मोत्सर्ग करने में कोई कमी नहीं छोड़ता है। सूबेदारनी के पुत्र को युद्ध क्षेत्र में बुखार हो जाने पर वह उसे अपनी जरसी उतारकर पहना देता है, उसे अपने दो कम्बल और बुरानकोट भी पहना देता है; बोधा सिंह के पूछने पर भी अपनी जाँघ में लगी गोली के विषय में नहीं बताता; सूबेदार जब पट्टी बाँधना चाहता है, तो 'थोड़ा घाव है, सबेरे देखा जाएगा' कहकर टाल देता है और जब सूबेदार उसे छोड़कर नहीं जाते, तो 'तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी की सौगन्ध है, जो इस गाड़ी में न चले जाओ', कहकर उन्हें जाने को विवश करता है।

लहनासिंह उपर्युक्त समस्त कार्य वस्तुतः सूबेदारनी की इस 'भिक्षा' की पूर्ति के लिए करता है, जो वह उससे युद्ध में जाने से पूर्व अपने पति और पुत्र की रक्षा, वचन में जैसे उसकी (सूबेदारनी की) की थी 'वैसे ही' करने के रूप में माँगती है अथवा कह सकते हैं उसके भावुक हृदय को भाँपकर अपने विशुद्ध स्वार्थ में लिप्त होकर माँग लेती है! लहनासिंह अपने अन्तिम समय में भी सूबेदारनी द्वारा माँगी गयी विशुद्ध स्वार्थपूर्ण 'भिक्षा' को नहीं भूलता है। सूबेदार जब उसे छोड़कर जाने में झिझकता है, तो वह कहता है—“बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरां को चिढ़ी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना और जब घर जाओ, तो कह देना जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया!”

#### निष्कर्ष :

कथा-शिल्प की दृष्टि से देखें, तो 'उसने कहा था' वास्तव में सर्वथा अनूठे शिल्प से युक्त अद्वितीय कहानी है, जिसमें 'क्लेशबैक' (पूर्व स्मरण) के माध्यम से कथानक विस्तार लेता है, परन्तु इतना स्पष्ट है कि इस कहानी को प्रेमकथा कहना उचित नहीं है। वस्तुतः 'उसने कहा था' मात्र नायक लहनासिंह के बचपन में सम्पर्क में आयी और जवानी में अनायास रूप से मिली सूबेदारनी के प्रति एकपक्षीय 'प्रेम' की कहानी है, जिसमें लहनासिंह की सूबेदारनी के प्रति अतिशय भावुकता ही उभर कर सामने आती है और प्रेम-तत्त्व प्रायः गौण ही रहता है। यह सुस्पष्ट है कि 'उसने कहा था' एक प्रेमकथा नहीं है, साथ ही इसमें कथित प्रेम और इसके बारे में कथित प्रेम वास्तव में पूर्णतः संदिग्ध है !

#### संदर्भ

1. 'गुलेरी रचनावली', संपादक-डॉ. मनोहरलाल, पृ. 473
2. कहानी- 'घण्टाघर' (सन् 1904), 'धर्मपरायण रीछ' (सन् 1906), 'सुखमय जीवन' (सन् 1911), 'बुद्ध का काँटा' (सन् 1914), 'उसने कहा था' (सन् 1915), 'हीरे का हार' (सन् 1987), गुलेरी जी की रचनाएँ, 'गुलेरी रचनावली' संपादक-डॉ. मनोहरलाल, पृ. 486
3. 'गुलेरी रचनावली', संपादक-डॉ. मनोहरलाल, पृ. 479
4. वही, पृ. 475
5. वही, पृ. 473
6. वही, पृ. 473
7. सिमोन द बोउवार 'स्त्री : उपेक्षिता', प्रस्तुति-डॉ. प्रभा खेतान, पृ. 253

## केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में सामाजिक यथार्थबोध

डॉ. एस. सूर्यावती

प्राध्यापिका, हिंदी विभाग, शासकीय महाविद्यालय

चोडवरम, अनकापल्लि जिला, अंध्रप्रदेश

Email: suryavathis@gmail.com

Phone: 9440417304

### शोध सार:

“जनगण-मन के जागृत शिल्पी

तुम धरती के पुत्र”

— नागार्जुन

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। उनकी कविताओं में व्यापक सामाजिक चेतना का चित्रण मिलता है। वे जीवन और जनता को प्यार करने वाले एक सहृदय, विनयी, विवेकशील व्यक्ति हैं। अपने यथार्थवादी सौंदर्य बोध को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करके काव्य चेतना का मार्ग प्रशस्त किया। केदार जी की लेखनी की निरंतरता ने साहित्य को बहुमूल्य संपत्ति प्रदान की है।

**बीज शब्द:** मार्क्सवाद, पूँजीपति, मजदूर, प्रजातंत्र आदि।

जनवादी कवि केदारनाथ अग्रवाल का जन्म बाँदा जिले के कुमासन गांव में सन् 1911 को और निधन 22 मई, 2000 को हुआ। आप ने प्रयाग और आग्रा विश्वविद्यालय में बी.ए. और एल.एल.बी. किया। बाद में वकालत की। प्रगतिशील साहित्य के आंदोलन से जुड़कर वे अपनी रचनाधर्मिता को आगे बढ़ाया हैं। उनकी रचनाएँ समय-समय पर 'हंस' और 'नया साहित्य' जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते थी। केदारनाथ अग्रवाल व्यापक चेतना के कवि हैं, उनकी रचनाओं में मार्क्सवादी विचारधारा परिलक्षित होती है। काल्पनिक आदर्शवाद और आशावाद से रहित इनकी रचनाएँ सच्ची यथार्थवादी कविताएँ कहलाती हैं। अपनी कविताओं के बारे में कवि स्वयं कहता है— “मेरी कविताओं में मेरा अनुभूत व्यक्तित्व तो हैं ही साथ ही साथ उसमें एक युगबोध और यथार्थबोध भी है। प्रत्येक कविता आत्मान्वेषिणी होते हुए भी यथार्थान्वेषिणी भी हैं।”<sup>1</sup> गाँव और नगर, धनी और निर्धन का अंतर भी इन्होंने बड़ी पटुता से अंकित किया है। वर्तमान जीवन के खोखलेपन को चाहे वह इन्हें कहीं भी दिखाई दिया हो चित्रित करने में यह कभी नहीं चूकते। सामाजिक उद्धार पर आधारित इनकी यथार्थवादी दृष्टि वास्तविकता की भयंकरता को कहीं भी पकड़ लेती है। शहर के लडकों के बारे में कवि ने लिखा है –

“शहर के छोकड़े

मैले फटे, बदबूदार वस्त्र पहने

बिना तेल कंधी के

रुखे उलझाए बाल

माओं बहनों को

पाप की दृष्टि से ताकते हैं।”<sup>2</sup>

इनके वस्तु जगत में गाँव का सरल कृषक हैं जो अभाव तथा ऋण में डूबा है तथा मजदूर है जिसके रक्त को जमींदार चूस रहा है। सूदखोर, महाजन, पूँजीपति, कर्मचारी और अधिकारी एकजुट होकर अपनी सुविधा के लिए परिस्थितियों को यथास्थित बनाए रखना चाहते हैं। वे स्वार्थी बनकर मानवीय संवेदना को भुला दिया है। उनकी कविताएँ कृषक जीवन के परिवेश की कविताएँ हैं, जिनमें कर्म और पसीने का सौंदर्य है।

उत्तर छायावादी काल में प्रगतिवादी आंदोलन को जिन थोड़े से कवियों ने बल दिया है, उनमें केदारनाथ अग्रवाल प्रमुख हैं। वे उन अवसरवादी कवियों में से नहीं हैं जो सरकारी नौकरी मिलते ही अपना मत बदल देते हैं। अपनी रचनाओं में उन्होंने पूँजीवादी सभ्यता के दोष गिनते हुए पूँजीपतियों की क्रूरता और हृदय हीनता की खुलकर निंदा की है। ऐसे लोगों को उन्होंने जनता का मांस नोचकर खाने वाले गिद्ध बतलाया है। किसान और मजदूर की दयनीय स्थिति के लिए उन्होंने सूदखोर मिल मालिक, राजनीतिक नेता और सरकार सभी को उत्तरदायी ठहराया है। देश की वर्तमान आर्थिक स्थिति की ओर संकेत करते हुए उन्होंने बताया है कि लोग आजीविका विहीन हैं, भूखे हैं, त्रस्त हैं।

साम्यवादी विचारधारा के प्रसार लिए एक ओर ये किसानों और मजदूरों को उत्तेजित कर उनमें विद्रोह की भावना का संचार करते हैं वहीं दूसरी ओर मनुष्य के उपचेतन पर प्रभाव डाल कर उसके भीतर से कुंठा, अहं और स्वार्थ की भावनाओं को नष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। जिनसे व्यक्तिवाद के पनपने की आशंका होती है। ये प्रवृत्तियाँ मोर्चे पर कविता में उभरकर आई हैं—

“मैं लड़ाई लड़ रहा हूँ मोर्चे पर।  
मैं अचेतन और उपचेतन सभी पर  
वार करता जा रहा हूँ।  
सूदखोर को,  
मिलों के मालिको को,  
अर्थ के पैशचिकों को,  
भूमि को हड़पते हुए धरणीधरों को  
मैं प्रणय के साम्यवादी आक्रमण  
से मारता हूँ।”<sup>3</sup>

शोषकों के प्रति अपना आक्रोश स्थान-स्थान पर तरह-तरह से व्यक्त किया है। मजदूरों के श्रम को लूटकर उन्हें भूख से तडपने के लिये छोड़ दिया है। निम्न कविता में कवि ने थैलीशाहों की शोषण का चित्रण किया है — “थैलीशाहों की यह बिल्ली/ बड़ी नीच हैं/ मजदूरों का खाना-दाना/ सब चोरी से खा जाती हैं/ बेचारे भूखे सोते हैं।”<sup>4</sup>

समसामयिक समाज में जो वर्ग वैषम्य हैं, निराशा है, दुख और अभाव है, उन स्थितियों को पूरी ईमानदारी से अपनी कविता में प्रस्तुत किया है। मार्क्सवादी चिंतक होने के नाते कवि परंपरागत धार्मिक मान्यताओं, रुढ़ियों, सड़ी गली परंपराओं, रुढ़िग्रस्त धर्म, मूर्ति पूजा का विरोध करता है। वे मानते हैं कि प्रगतिशील समाज के ये बाधक तत्व हैं। और ये समाज को पतनोन्मुख बनाता है। जनवादी कवि केदारनाथ ने रुढ़िग्रस्त धर्म तथा मूर्तिपूजा का विरोध इस प्रकार करते हैं —

“छोटी सी देवमूर्ति/ आले में रखी थी/ बेचारी औचक ही/ चूहे के धक्के से/ दांसा के पत्थर पर/ नीचे गिर टूट गई”<sup>5</sup>  
कवि रोज़ी रोटी की समस्या का उल्लेखित करते हुए कहते हैं कि—

“रोटी तुमको राम न देगा, वेद तुम्हारा काम न देगा

जो रोटी के लिए लड़ेगा, वह रोटी आप वरेगा।”<sup>6</sup>

कवि ने राजनीतिक नेताओं का उपहास किया है। नेताओं के खंडित व्यक्तित्व को रेखांकित करता है –

“न तुम भविष्य को उज्वल कर सकते हो  
न आज को सुंदर कर सकते हो।”<sup>7</sup>

चतुर्थिक अन्याय देखकर कवि का मन दुःखित होता है। सर्वत्र जोर-जुल्म और भ्रष्टाचार व्याप्त है। एक वकील होने के नाते, वे स्वयं न्यायालय में हो रहें अन्याय और नौकरशाही को देखकर बर्दाश्त नहीं कर पाते हैं। वे नौकरशाही और अफसरशाही का विरोध करते हैं।

“जनता का जमघट मैं बाँधू  
इनका तोड़ूँ नौकरशाही।  
अफसरशाही का सिर फोड़ूँ।”<sup>8</sup>

सामान्य जनता की व्यापक संवेदना को अपनी रचनाओं में मुखरित किया है। इनके काव्य में कानपुर के मजदूरों से लेकर बांदा जिले के किसानों के जीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है। तत्कालीन समाज में उपस्थित बेरोजगारी की समस्या का चित्रण करता है।

“रट्टी की टोकरी का जीवन है/ संज्ञाहीन, अर्थहीन/ बेकार चिर फटे टुकड़ों सा पड़ा है/ देरी है/ एक दिन, एक बार, आग के चूने की/ राख हो जाना है।”<sup>9</sup>

केदारनाथ ने गरीबों की ही नहीं निम्न मध्यवर्गीय परिवार की समस्याओं का भी चित्रण किया है। उनकी मायूसी और वस्त्राभाव की स्थिति ‘हे मेरी तुम’ कविता में प्रस्तुत किया है।

इतना ही नहीं वो निम्न जातियों को उद्धोधन किया। ‘मछुआरे’ और ‘दीन कुनवा’ जैसे कविताओं ने उन लोगों की बदहाली का चित्रण किया है। मछुआरे कविता में कवि कहते हैं –

“अर्राती चौगुनी धार को  
सहज चीरकर बढ़ने वाले  
गंगा तट के ये मछुआरे  
नैया पार लगाने वाले।”<sup>10</sup>

नारी स्वतंत्रता की कामना करते हुए केदार ने ‘रनिया’ नामक कविता में लिखा है–

“अब रनियाँ के दिन आये है  
जग उसके माफिक बदलेगा।”<sup>11</sup>

राजनीतिक अराजकता पर भी केदारनाथ ने गहरा व्यंग्य किया है।

स्वाधीन भारत में पतनोन्मुख नेताओं के चरित्र पर केदारनाथ आक्रोश और चिंता व्यक्त करते हुए लिखते हैं –

“सत्ताइस साल में तुम  
न तुम रह गए तुम।  
ना हम रह गए हम  
तुम हो हो गए खूंखार  
हम हो गए बीमार, अभावग्रस्त, लाचार”<sup>13</sup>

कवि जनवादी सरकार बनाने के पक्ष में है। वह सरकार की कड़ी आलोचना इसलिए करता है कि वह भारत में ब्रिटिश अर्थ नीती लागू करना चाहता है। सरकार अधिक टैक्सों को जनता पर लादकर जीवन के अधिकार को छीन लेती हैं। अंग्रेज भारत को छोड़कर चले गए किंतु सरकार अंग्रेज शासन रीति को खुद छोड़ नहीं पा रहीं है कवि के शब्दों में-

“अर्थनीति में राजनीति में गहरा गोता खाया।

जनवादी भारत का उसने सब कुछ वहाँ गँवाया।”<sup>14</sup>

कवि ने 1978 में जनतंत्र की दुर्गति का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। अगली पीढ़ी के द्वारा देश की विकास की कामना करते हुए कवि कहते हैं कि सिर्फ भाषणों से काम चलाने वाले शासकों की खिल्ली उड़ाते हुए कवि कहते हैं -

“देश में लगी आग को

लपफाजी नेता

शब्दों से बुझाते हैं।

वाग्धारा से उर्वर

और देश को

आत्मनिर्भर बनाते हैं

लोकतंत्र का शासन

भाषण तंत्र से

चलते हैं।”<sup>15</sup>

आततायी सत्ता के खोखलेपन तथा उसके अनाचार को बेनकाब करता हुआ कहता है-

“आग लगे इस समाज में।

ढोलक मढती है अमीर की

चमड़ी बजती है गरीब की।

खून बहाए रामराज में। आग लगे..”<sup>16</sup>

देश में फैली अराजकता का पर्दाफाश करते हुए कवि कहते हैं कि इस देश में आराम की जिंदगी जी नहीं सकते। यह पता नहीं कि किसका चाकू किसके पेट में घुसता है अर्थात् मौत कब आ जाती है। यह अराजकता बढ़ती ही जा रही है। किसी को सुकून की जिंदगी जीने का अधिकार इस स्वतंत्र भारत में नहीं रह गया है।

केदारनाथ अग्रवाल ने यथार्थवाद सौंदर्यबोध को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करके राजनीतिक काव्य चेतना का मार्ग प्रशस्त किया है। उनकी कविता की सबसे बड़ी शक्ति लोकपरता है। उनकी लोकोन्मुखता जीवन के सहज आवेग से संपृक्त है। उन्होंने लोक जीवन की अनुभूति, सौंदर्य बोध और प्रकृति से जुड़े सवालों का सहज और उदात्त मानवीय भूमि पर ग्रहण किया। जन संस्कृति के तहत उनकी कविताएँ ग्रामीण समाज के सुख-दुख, राग-रंग, हास-विलास, आशा-आकांक्षा में शामिल हैं। अमृतराय के शब्दों में “केदार गहरी जीवन के आस्था का कवि हैं। मैं समझता हूँ यही उसके कवि व्यक्तित्व का बीज गुण हैं। उसके काव्य उन्मेष का बीजमंत्र और उसकी काव्य उपलब्धि का सार मर्म”<sup>17</sup>

#### निष्कर्ष:

केदारनाथ अग्रवाल की कविताएँ अधिकतर जीवन के सामाजिक और मानवीय मुद्दों पर आधारित हैं, जिससे व्यक्तिगत अनुभव और समस्याओं का सामाजिक संदेश प्रस्तुत होता है। केदारनाथ किसान और मजदूरों के समर्थक, शोषकों और पूँजीपतियों

के विरोधी, नारी स्वतंत्रता के आकांक्षक, गरीबों के पक्षधर हैं। अशोक त्रिपाठी के शब्दों में “ ये कविताएँ देश के मेहनत मजूरी करने वाले लोगों की आत्मा की पुकार हैं, उनकी झुंझलाहट हैं, उनकी तिलमिलाहट हैं, उनकी खिसियाहट हैं, उनकी संघर्ष की खिसियाहट हैं, उनकी संघर्ष की संकल्प शक्ति हैं।”<sup>18</sup>

#### संदर्भ :

1. केदारनाथ अग्रवाल – फूल नहीं रंग बोलते हैं भूमिका से पृ. 4
2. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ. 45
3. डॉ. लल्लन राय – हिंदी की प्रगतिशील कविता पृ. 155, 156
4. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी-खरी पृ. 6
5. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ. 33
6. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ. 38
7. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी-खरी पृ. 188
8. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ. 128
9. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ.29
10. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ.54
11. केदारनाथ अग्रवाल – गुलमेहंदी पृ.48
12. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी खरी पृ. 90
13. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी खरी पृ. 186
14. केदारनाथ अग्रवाल – मारे प्यार की थापें पृ. 79
15. केदारनाथ अग्रवाल – मारे प्यार की थापें पृ. 26
16. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी खरी पृ. 81
17. अमृतराय – आधुनिक हिंदी कविता सं. जगदीश चतुर्वेदी पृ. 79
18. केदारनाथ अग्रवाल – कहे केदार खरी खरी की कैफियत से पृ.10

# हिंदी उपन्यासों में चित्रित नयी सदी की समस्याएँ

बोनोड पांडुरंग पोषट्टी

पीएच.डी. (हिंदी)

हिंदी विभाग

उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद, तेलंगाना

मो.नं. 9000957758

नयी सदी के हिंदी उपन्यासों में सामाजिक समस्याएँ केंद्र में हैं। स्वतंत्रता के बाद देश में तीव्र गति से परिवर्तन हुआ। इस परिवर्तन ने वैयक्तिक और समूहगत स्तर पर सामाजिक और आर्थिक समस्याओं ने सर्वाधिक प्रभावित किया है, जिससे इनमें विघटन की स्थितियाँ भी पैदा हो गई हैं। स्वतंत्रता के 75 वर्ष बीत जाने के बावजूद आम आदमी की सामाजिक व आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। आज 'अर्थ' जीवन की धुरी बना हुआ है। इस अभाव ने आम लोगों के जीवन को घोर निराशा में डाल दिया है। प्रत्येक युग का सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन किसी सीमा तक आर्थिक बोध से प्रभावित रहा है। 'अर्थ' पर ही समाज का विकास निर्धारित होता है, यह एक सर्वमान्य सत्य है परंतु आज के युग में 'अर्थ' को जितना महत्व प्राप्त हुआ है, इससे पहले उतना कभी नहीं रहा। किसी भी व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का निर्णय आज उसकी आर्थिक स्थिति निश्चित होने लगी है। आज अर्थ व्यक्ति व समाज का मेरुदंड बन गया है। आज देश की अर्थ व्यवस्था पर पूँजीवादी शक्ति का शिकंजा कसा है, जिससे आम लोगों में अभावग्रस्तता, महंगाई, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, बेरोजगारी की समस्या बढ़ रही हैं। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ एक आवश्यक साधन बन गया है। औद्योगिक, वैज्ञानिक विकास और भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति बढ़ते आकर्षण ने अर्थ प्राप्ति ही व्यक्ति का चरम उद्देश्य बना दिया है। समाज में प्रतिष्ठा और मान-सम्मान की कसौटी मानव मूल्य न होकर भौतिक समृद्धि बन गयी है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में सामयिक समस्याओं को विस्तृत रूप से अंकित किया है।

अलका सरावगी के 'कलि कथा : वाया बाईपास' उपन्यास में मारवाडी किशोर बाबू को केंद्र में रखकर गुजरात से कोलकत्ता तक फैले उत्तर भारतीय समाज की यथार्थ कथा इसमें संवेदनशीलता के चित्रित है। इस उपन्यास में वस्तु अनेक स्तर पर विद्यमान है, जिनमें मारवाडी समाज में स्त्रियों की घूटनभरी जीवन का है, जिसके केंद्र में किशोर बाबू की विधवा भाभी है। मारवाडी समाज में विधवा स्त्री को बिना किनारी के सफेद साड़ियाँ पहनने के सिवाय और कुछ पहनने का हक नहीं था। किशोर बाबू की भाभी जब यह सोचकर कि आज तो सब शिक्षित लोग आएं। बहुत प्रसन्न मन से वह साड़ी पहनकर शर्माती हुई कमरे से बाहर निकलती है, तभी किशोर बाबू अपनी परंपरागत सोच के कारण यह स्वीकार नहीं कर पाता है। वे समाज की दुहाई देते हुए विधवा स्त्री को उसी दयनीय अवस्था में धकेल देना चाहते हैं- "तुम्हारा दिमाग क्या अब एकदम ही खराब हो गया है भाभी। उम्र बढ़ने के साथ-साथ आदमी की अक्ल बढ़ती है पर मुझे लगता है यू. पी. वालों की अक्ल कम होने लगती है। यह क्या इतने चटक-मटक रंग की साड़ी पहनी है। क्या कहेंगे लोग देखकर। कुछ तो मर्यादा रखी होती समाज में।"<sup>1</sup> पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था में एक विधवा स्त्री का अच्छे कपड़े में पहनना मर्यादा खत्म हो जाती है। इस उपन्यास में रूढ़िवादी समाज की कथा ही नहीं है वरन् भारतीय पुरुषसत्तात्मक समाज की विसंगतियों का भी चित्रण है। सच क्या है यह किशोर बाबू जानते हैं। बदलते समय के कारण किशोर बाबू भी अपनी पत्नी में स्वतंत्र



व्यक्तित्व का विकास चाहते हैं परंतु उनकी सारी चेष्टाओं के बावजूद उनकी पत्नी के व्यक्तित्व का विकास नहीं होता है। इसका कारण वह स्वयं स्वीकार करती है— “इसलिए कि तुमने मेरी नकेल हमेशा अपने हाथों में कसकर पकड़े रखी। कभी अपने आप कोई निर्णय लेने नहीं दिया चाहे कितनी मामूली से मामूली बात क्यों न हो।”<sup>2</sup> किशोर बाबू हमेशा अपनी पत्नी को चाबी की गुड़िया की तरह चलाते रहते हैं। अपनी पत्नी की काबिलीयत पर कभी भी भरोसा नहीं करता है। मनुष्य की समस्या यही है कि वह किसी बने बनाए सिद्धांत पर पूरा जीवन नहीं चल पाता है। कई बार निजी स्वार्थों के कारण उसके सिद्धांत बदलते रहते हैं। यह मनुष्य की प्रवृत्ति है। शिक्षा, विज्ञान और सामाजिक व्यवस्था के बदलावों से स्त्री की स्थिति में परिवर्तन आया है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सजग होने लगी है, जिससे वह प्राचीन रूढ़ियों और परंपराओं से मुक्त हो रही है। आर्थिक उदारीकरण और सूचना प्रसार ने साहित्य को पूर्ण रूप से परिवर्तित किया है। पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव और नवीन सांस्कृतिक बोध के कारण नई दृष्टि का उदय हुआ है। पुरुष के वर्चस्व का खंडन और हाशिए पर धकेल दी गई स्त्री समाज में खोयी अपनी प्रतिष्ठा, सम्मान और अस्मिता का स्थान तलाश रही है।

नासिरा शर्मा के ‘कुड़ियाँजान’ उपन्यास में इक्कीसवीं सदी की आर्थिक समस्या को दर्शाया है। प्राकृतिक आपदाओं जैसे पानी की कमी, बाढ़, तूफान, महामारी फैलना आदि समस्याओं से समाज में आर्थिक विषमता फैलती है। इससे धन-संपन्न वर्ग पैसे के बल पर अपना समय निकाल लेते हैं परंतु निम्न वर्ग का जीना मुश्किल होता है। प्राकृतिक आपदाओं के साथ कुछ धनी लोग निम्न वर्ग का शोषण करते हैं। परिणामस्वरूप निम्न वर्ग अकाल ग्रस्त बन जाता है। एक पानी को ही ले तो यह एक प्रकृति का उपहार है और इस पर सब का अधिकार है। इस स्थिति में निम्न वर्ग को पानी को खरीद कर पीना पड़ता है। इस सच्चाई को उजागर करता एक व्यक्ति पानी की समस्या पर बहस करते हुए कहता है कि— “आपकी परेशानी अपनी जगह, हमारी धरती पर किए गए अत्याचार अपनी जगह। आप लोग प्रबुद्ध हैं। परंतु मैं आपके सामने कह सकता हूँ कि गांव कस्बों में ठाकुर का कुआँ आज भी जीवित है। उन गांवों में जहाँ मीठे पानी से कुएँ लबालब भरे हैं, वहाँ दलितों को आज भी तीन रुपये घड़ा उसी गांव का आदमी बेचता है। आप इस समस्या का समाधान कैसे ढूँढ़ेंगे?”<sup>3</sup> आज भी निम्न वर्ग की आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है। उन्हें उच्च और मध्य वर्ग के घरों और कार्यालयों में मजदूरी करनी पड़ती है। उच्च वर्ग के लोग उनसे मनचाहा काम करवाते हैं और निम्न वर्ग का शोषण करते हैं। काशीनाथ सिंह के उपन्यास ‘रेहन पर रघू’ में इक्कीसवीं सदी की बेरोजगारी की भयावह समस्या का मार्मिक चित्रण है। खेती श्रम आधारित है। किसान और उसका परिवार मिलकर खेती करते हैं। जो बड़े और साधन संपन्न किसान होते हैं, वे अपना काम खेतिहर मजदूरों से कराते हैं। ग्रामीण मजदूरों को तो पूरे साल का न काम मिलता है न ही उचित मजदूरी मिलती है। वे काम की तलाश में शहरों-महानगरों की ओर पलायन कर रहे हैं।

उपभोक्तावाद को बढ़ाने के लिए पूंजीपति दूसरे बहुत बड़े वंचित वर्ग को उसकी पूरी सभ्यता को ही नष्ट करने लगे हैं। भारत के हर प्रदेश में आदिवासी जनजातियाँ निवास करती हैं। आज भी वे अपने प्राकृतिक जीवन से जुड़े पहलुओं के साथ जीवन जीते हैं किंतु आज उपभोक्ता व्यवस्था उन्हें अपने ही जल, जमीन और जंगल यानी अपने घर से बेदखल करने में लगी है। वे आज मजदूर बन गए हैं। पूंजीपति उन्हें लालच देकर उन्हें खदानों में खुदाई में लगाते हैं परंतु आगे चलकर यह उनके लिए जानलेवा साबित होता है। इस दयनीय स्थिति का मार्मिक अंकन रणेंद्र ने अपने उपन्यास ‘ग्लोबल गांव के देवता’ में किया है— “एक तरफ इन खानों में मजूरी दी तो दूसरी तरफ बर्बादी के सरंजाम भी खड़े किए। पिछले पच्चीस-तीस सालों में खान मालिकों ने जो बड़े-बड़े गड्डे छोड़े हैं, बरसात में इन गड्डों में पानी भर जाता है और मच्छर पलते हैं। सेरेबल मलेरिया यहाँ के लिए महामारी मुंडीकटवा से साल-दो-साल पर भेंट होती है किंतु इस जानमारु से तो हर रोज भेंट होगी।”<sup>4</sup> उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि पूंजीपतियों और सत्ताधारियों ने वहाँ के स्थानीय लोगों को मृत्यु के मुंह में धकेला है। उपन्यासकार ने यहाँ स्पष्ट किया है कि विकास के नाम

पर स्थानीय लोगों पर होने वाले शोषण के विरोध में एकता दिखानी होगी, जिससे इस अन्याय के भंवर से बचकर अपने अस्तित्व बचाया जा सकता है। वरना इस विकास की आँधी में ये लोग गायब हो जाएंगे। इस उपन्यास में स्पष्ट रूप से इस शोषण के विरोध में प्रतिरोध का स्वर दृष्टिगत होता है। रणेंद्र ने प्रतिरोध के इस स्वर को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है- “अवैध खनन के लिए पांच-दस असुरों को रोज फुसलाया जाता है। हर उपाय से उनकी जमीन हथियायी जाती है। बॉक्साइड निकाल-निकालकर मौत की खाइयाँ छोड़ी जा रही है। इन सवालियों को जोड़िये, तभी असुरों के साथ उरांव, खेरवार, सदान सब आपकी लड़ाई में जुटेंगे।”<sup>5</sup> निजीकरण, उदारीकरण और उद्योगीकरण आदि के विनाशकारी विकास ने जनजातियों को हाशिए पर धकेल दिया है, जिससे उनकी अस्मिता पर खतरा मंडराने लगा है। विकास के नाम पर इनके विनाश की साजिश रची जाने लगी है। सल्वा जुडुम और ऑपरेशन ग्रीन हंट जैसे नामों की आड़ में विकास के नाम पर सरकार की सोच है, वह नकारात्मक है। यह कैसी उपभोक्तावादी संस्कृति है जो एक छोटे से वर्ग के लिए दूसरे बहुत बड़े तबके की बलि चढ़ायी जा रही है।

आज देश के लिए कैसी विडंबना है कि भारत जैसे देश में जनता भूखे पेट सोती है, वहीं दूसरी ओर पश्चिमी देशों में एक्सपायरी डेट के नाम पर भोजन फेंक दिया जाता है। प्रदीप सौरभ ने अपने उपन्यास ‘मुन्नी मोबाइल’ में इस पर चोट की है। उपन्यास का पात्र जोगिंदर सिंह कहता है कि- “इंग्लैंड में एक्सपायरी का चक्कर जरदस्त है। हर स्टोर से हर दिन एक्सपायर हुई, खाने-पीने की चीज फेंकी जाती है। यही हमारा भोजन बनती है। एक्सपायरी खाना अंग्रेजों के लिए खराब होता होगा, लेकिन हमारा डायजेस्टिव सिस्टम इसके लिए पूरी तरह ठीक है। इंडिया में भी तो हम एक्सपायरी चीजें ही खा रहे हैं।”<sup>6</sup> वैश्वीकरण के दौर में प्रवेश करने के बाद विश्व में एक ओर तेजी से फैला है वह प्लास्टिक मनी। आज अपने साथ रुपये लेकर चलने के दिन चले गए। अब तो क्रेडिट कार्ड का जमाना है। इसके लिए एक ओर व्यक्ति के जीवन को सुविधायुक्त बनाया है तो दूसरी ओर बिना पैसे के मौजमस्ती की लत भी पैदा कर दी गई है। यदि आपके पास मौज-मस्ती करने के लिए पैसे नहीं हैं तो चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। आप क्रेडिट कार्ड का प्रयोग कर अपनी इच्छाओं को पूरा कर सकते हैं। क्रेडिट कार्ड ने आज समय की परिभाषा बदल डाली है। महानगरीय बाजारवादी सोच ने संयम को दमन के रूप में प्रचारित किया है। आज हर कोई शून्य बाजार दर के मोहक मायाजाल में लोगों को लुभाना चाहा है। वह आज के व्यक्ति को उपभोग के लिए उकसाता है। प्रदीप सौरभ ने महानगरीय जीवन के यथार्थ रूप स्पष्ट करते हुए लिखा है- “एक अमेरिकन के पास औसतन पंद्रह क्रेडिट कार्ड्स होते हैं। उनके या किसी बुजुर्ग की मौत पर विरासत में परिवार वालों को क्रेडिट्स कार्ड्स और दूसरे लोग के बिल मिलते हैं। भारत में ऐसी स्थिति में परिवार वालों को मकान सोना-चाँदी और भी बहुत कुछ मिलता है। भारत में ऐसा दर्शन भी है कि उधार लेकर भी पीओ।”<sup>7</sup> लेखक अपने उपन्यास में अमेरिका और भारतीय विचारधारा की तुलना करते हैं। भारत को प्राचीन काल से संयम पूर्ण जीवन जीने की आदत नहीं है। भोगवादी संस्कृति का असर अभी दिखाई देने लगा है। बाजारवाद ने शहरों को ही अपने मकड़जाल में फंसा है। यहाँ का ग्रामीण समाज आज भी जरूरत की वस्तुओं को ही प्राथमिकता दे रहा है। वहाँ तक वैश्विक आर्थिक विचारधारा का प्रभाव पड़ा है। उसके द्वारा खेतों में लगाई जाने वाली फसल का मूल्य अब अंतर्राष्ट्रीय बाजार तय करता है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासकारों ने बहुत सूक्ष्म, गहराई और विस्तार में जाकर महानगरीय जीवन का अंकन अभिव्यक्त किया है। विगत बीस-पच्चीस सालों में वैश्विक आर्थिक चेतना विविध रूपों में फैली हुई है। देखा जाए तो भारत के लिए यह एक सांस्कृतिक संक्रमण का काल है। उपन्यासकारों ने इस महानगरीय प्रभाव का आकलन जिस रूप में किया है, वह अपने आप में बेहद महत्वपूर्ण है।

आज देश की अर्थ व्यवस्था पर पूँजीवादियों का शिकंजा कसा हुआ है, जिसमें आम जनता अभावग्रस्त स्थिति में महंगाई और बेरोजगारी का शिकार है। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ एक जरूरतमंद साधन बन गया है। लोगों का भौतिक

सुख-सुविधाओं के प्रति आकर्षण बढ़ता जा रहा है। अर्थ प्राप्ति ही व्यक्ति का चरम लक्ष्य बना है। समाज में प्रतिष्ठा, मान-सम्मान की कसौटी मानव मूल्य न रहकर भौतिक समृद्धि बन गयी है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकारों ने विभिन्न समस्याओं को विस्तार से अभिव्यक्त किया है।

**संदर्भ :**

1. अलका सरावगी – कलिकथा वाया बाईपास, पृ.सं. 61
2. अलका सरावगी – कलिकथा वाया बाईपास, पृ.सं. 159
3. नासिरा शर्मा – कुइयांजान, पृ.सं. 105
4. रणेंद्र – ग्लोबल गांव के देवता, पृ.सं. 13
5. रणेंद्र – ग्लोबल गांव के देवता, पृ.सं. 48
6. प्रदीप सौरभ – मुन्नी मोबाइल, 102
7. प्रदीप सौरभ – मुन्नी मोबाइल, पृ.सं. 104

## हिंदी साहित्य में आधुनिक विमर्श की उपादेयता

डॉ. शेख बेनज़ीर

सहायक आचार्य,

हिंदी विभाग, एस.वी.सी.आर शासकीय महाविद्यालय, पलमनेर,

जिला – चित्तूर, आन्ध्रप्रदेश 517408

सामाजिक परिवेश की समीक्षा में हर बार यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक घटकों में स्थिरत्व नहीं होता। वे समय और स्थिति के अनुरूप बदलते रहते हैं। समाज में विद्यमान मूल प्रवृत्तियों में सांगोपांग परिवर्तन होते हैं। साहित्य सामाजिक संवेदनाओं का बिम्ब है। फलतः साहित्य भी सृजन से, पुनः सर्जन की ओर उन्मुख होता है। पूर्ववर्ती साहित्य कितना ही श्रेष्ठतर क्यों ना हो, उसे ऐसे दौर से गुजरना पड़ता है, जहाँ उसे बोझ एवं नीरस समझा जाता है। इसी प्रक्रिया से होकर हिंदी साहित्य अपने आधुनात्म स्वरूप में प्रदीयमान है। हिंदी साहित्य में 19 वीं शती के आरंभ से ही प्राचीन परिपाटी के प्रति उदासीनता दिखाई देने लगी। परंपरागत छंदों, भक्ति, प्रेम, श्रृंगार और प्रशस्तियों के प्रति विद्रोह का स्वर तीव्रतर होने लगा। यह किसी एक विधा या विचारके प्रति विद्रोह ना था। यह तो समस्त साहित्य में नवीनता लाने के लिये चलने वाला आंदोलन था। नवीन विचारों की प्रेरणा से उत्पन्न वह भावधारा थी, जो आधुनिक साहित्य के नाम से अभिहित हुई। इसमें साहित्यकार आत्मनिष्ठता से समिष्टि, कल्पना से यथार्थ और अलौकिक से लौकिक भूमि की ओर अग्रसर होते गए। देश के सामाजिक-राजनीतिक आंदोलनों ने ना सिर्फ भारतीय समाज का प्रक्षालन किया, बल्कि वे साहित्य में छाई अराजकता को मिटाने में भी सफल हुए। जिसका परिणाम ही आधुनिक काल का आविर्भाव है। भारतेन्दु, महावीर प्रसाद, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, प्रसाद, पन्त, निराला, दिनकर जैसे साहित्यकारों की नैरंतर्य साहित्य सेवा से बीसवीं सदी से आधुनिक साहित्य का आविर्भाव हुआ।

संसार में जो कुछ घटित होता है उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। साहित्यकार का हृदय समाज की संवेदनाओं से स्पंदित होता है। साहित्य हमेशा से समाज को दिशा देने एवं लोकमंगल की भावना को साकार करने के लिए कृत संकल्पित रहा है। साहित्य सर्जनशील प्रक्रिया है जो बेहतर समाज के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध है। वर्तमान समय में समाज के सभी वंचित, उपेक्षित, शोषित समूहों ने अपने अधिकारों, अस्मिता एवं अस्तित्व के लिए निर्णायक लड़ाई छेड़ दी है। यह लड़ाई किसी के विरुद्ध नहीं अपितु मानवता के पक्ष में लड़ी जा रही है। इसी से 21 वीं सदी के साहित्य में अनेक विमर्शों की प्रतिष्ठा हुई है। विविध विमर्शों के माध्यम से पीड़ित, वंचित वर्ग की दबी आवाज को बल मिला, उन्हें हाशिए से मुख्य धारा में आने में मदद मिली, उनकी समस्याओं पर समाज की दृष्टि पड़ी और उस वर्ग के उत्थान को बल मिला।

इस पृष्ठ भूमि को लेकर चलने वाले साहित्यकारों ने आधुनिकता के प्रति आस्था दिखाई। अब वे साहित्य अंधानुकरण नहीं करते। क्रांतिकारी होकर आधुनिकता के प्रति जागरूक होना साहित्यकार का सहज लक्षण होता है। इस कारण साहित्य में ऐसे विषय सामाविष्ट होते गए, जिसका विमर्श आवश्यक हो गया। समसामयिक मुद्दे अब साहित्य में समीक्षा और विचार विमर्श के लिए स्वीकृत हो गए। नारी चेतना, नारी –सशक्तिकरण, ग्राम चेतना, कृषक संघर्ष, आतंकवाद, बाल शोषण, दांपत्य जीवन, यौन विकृतियाँ, दलित चेतना, देश विभाजन की त्रासदी, मूल्य विघटन, शहरीकरण आदि पर विमर्श होने लगे। सामाजिक यथार्थ, लघुमानव, जीवन संघर्ष, दलित, प्रताडित, पीडित आदि साहित्य के आलोच्य विषय बन गए। फलतः आधुनिक विमर्श के नए-

नए आयाम उभरते गए। इन विमर्शों से साहित्य को बहुत कुछ मिला। आधुनिक साहित्य के विमर्शों से साहित्य का रूप कुछ इस प्रकार है।

कोई भी साहित्यकार अपनी रचना में अपने वर्ण्य विषय को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत करना मात्र अपना धर्म नहीं समझता। वह अपनी रचना में समाजिक जीवन की समीक्षा करता है। समाज के लिए आदर्श, विकासशील प्रतिमानों, मूल्यों को निर्देशित करता है। जिसे सजग पाठक स्वीकार भी करता है। साहित्यकार पाठक को जीवन की कटु परिस्थितियों से अवगत कराता है। "साहित्य में यथार्थ का ही नहीं – मानव आदर्शों, मानव विश्वासों और परंपरागत धारणाओं का निरूपण भी करता है।"<sup>1</sup> आधुनिक विमर्शों में इन्हीं निरूपणों को महत्व मिलने लगा। साहित्यकारों ने बदले हुए समाज को नवीन जीवन दृष्टिप्रदान की। निराशा और कुंठाको दूर कर नवीन ऊर्जा का संचार करना इनका लक्ष्य था। साहित्यकार ने साहित्य को मात्र मनोरंजन का साधन मानने से इंकार कर दिया। वे साहित्य को विशिष्ट उद्देश्य का प्रतिपादक मानने लगे। अपने नायक एवं पात्रों को आदर्श एवं मूल्यों का प्रतिनिधि मानने लगे। जिससे साहित्य समिष्टि की ओर अग्रसर होता गया। साहित्यकार जीवन की व्याख्या करने लगा। नए मानव को युगीन जीवन दृष्टिकोण प्रदान करना ज़रूरी समझा। साहित्यकार के पास वह शक्ति होती है जिससे वह मानव मन के गहन स्तरों को पहचान सकता है। इसे पहचानकर साहित्यकार पात्रों के माध्यम से जीवन दर्शन की व्याख्या करता है। आधुनिक विमर्शों में इन प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है।

आधुनिक काल के आरंभ से ही भारतीय जनता जान चुकी थी वे अपनी संस्कृति और अस्तित्व को भुला रहे हैं। अब ज़रूरी था उसे बचाए रखना। कई दशकों से परतंत्रता की त्रासदी को झेल रहे थे। पर अब प्रश्न स्वदेश एवं स्व-अस्तित्व का था। साहित्यकारों ने भी इसकी जिम्मेदारी ली। साहित्यकारों ने भी अंधविश्वासों एवं कुविचारों को जड़ से मिटाने की गुहार लगाई। साहित्य के माध्यम से चलने वाले सांस्कृतिक चेतना के विस्तृत प्रभाव से भारतीयता की पुनः पहचान होने लगी। विदेशी संस्कृति के अंधे मोह की तीव्र भर्त्सना की जाने लगी। जो आधुनिक विमर्शों में दिखाई देने लगी। "धार्मिक-सांस्कृतिक आंदोलन ने जिस प्रकार पुराने को नये से और नये को पुराने से सम्बद्ध किया, उसी प्रकार कला और साहित्य ने भी किया।"<sup>2</sup> आधुनिक युग के साहित्य ने आधुनिक विचारों का समर्थन किया, परंतु परंपरागत स्वस्थ भारतीय मूल्यों एवं सद्बिचारों का समर्थन किया। प्राचीन संस्कृति के उदात्त एवं विकासशील आदर्शों को नवीन रूप में प्रस्तुत किया। जिससे साहित्य के माध्यम से नवीन समन्वित संस्कृति की स्थापना हुई। साहित्यिक विधाओं में प्राचीन भारतीय संस्कृति को नए रूप में प्रस्तुत करने की प्रथा आरंभ हो गई। साहित्य को नया आयाम प्राप्त हुआ।

आधुनिक विमर्शों की भरमार से साहित्य की परिधि में भी पर्याप्त विकास हुआ। अब साहित्यकार कल्पना से परे प्रत्यक्ष जन जीवन को ही साहित्य का मुख्य प्रतिपाद्य मानने लगे थे। प्रामाणिक अनुभूति के प्रति प्रतिबद्ध हो चुके थे। फलतः साहित्य के प्राचीन प्रतिमानों को सर्वथा निरर्थक साबित करने लगे। साहित्य में परंपरागत प्रतीकों एवं उपमानों का परित्याग होने लगा। नवीन विचारों एवं जीवन सत्यों को उद्घाटित करने के लिए सरलतम शैलियों को अपनाने में ही साहित्यकार ने रुचि दिखाई। पद्य के क्षेत्र में मुक्त छंदों को प्रधानता मिलने लगी तो गद्य में बोलचाल की सरल एवं सपाट बयानी को। गद्य में अनेक नई विधाओं का समावेश हुआ जैसे डायरी, पत्रलेखन, कथा, नाट्य, निबंध, आलोचना, जैसे पूर्ववर्ती गद्य विधाओं के रूप गठन में परिवर्तन भी हुआ। "अन्य विधाओं में भी कथ्य की विविधता और शैलीगत नूतन प्रयोगों की दिशा में इस युग के साहित्यकारों में जो जागरूकता लक्षित होती है, वह पूर्ववर्ती लेखकों में नहीं मिलती।"<sup>3</sup> यह आधुनिक विमर्शों की चेतना का परिणाम है।

वैचारिक धरातल की दृष्टि से आधुनिक विमर्शों को पहचानने की कोशिश की जाए तो पता चलेगा कि विमर्शों के माध्यम से साहित्य में अधुनातन सिद्धांतों एवं दर्शनों का आगमन हुआ। साहित्यकारों ने विविध विषयों को रचना का प्रतिपाद्य चुना तो साहित्य

के मूल्य, सौंदर्य बोध, प्रवृत्तियाँ आदि नवीन रूप लेने लगे। साहित्य में रूढ़ हो चुकी धारणाएँ शिथिल होने लगी। कार्ल मार्क्स, फ्रायड के सिद्धांतों के प्रभाव से स्वतंत्रता पूर्व ही वैचारिक जड़ता को धक्का लगा था, जो कि स्वतंत्रता के बाद और अधिक हुआ। भारतीय समाज एवं राजनीति के लिए अभिशाप बन चुके घटकों को मिटाने की प्रक्रिया साहित्य में आरंभ हुई। यथार्थ, अति यथार्थ, बौद्धिकता, भौतिकता आदि विचारों के ढाँचे में पात्र ढलने लगे। ज्ञान-विज्ञान के विकास के फलस्वरूप साहित्यकारों की दृष्टि में भी युगांतरकारी परिवर्तन हुआ। “विज्ञान के द्वारा आध्यात्म और आध्यात्मिकता जैसी चीजों का पूरी तरह निषेध किया गया, क्योंकि उसके पीछे किसी तरह की इंद्रिय गम्य – स्थूल कारण कार्य की श्रृंखला उसे नहीं मिली परिणाम यह हुआ कि वैज्ञानिक उन्नति के अनुपात में ही दिनोंदिन मानव के प्रति ही संपूर्ण निष्ठा केंद्रित होती गई। मानवेंतर जो भी था, मूल्यहीन होता चला गया।”<sup>4</sup> नए विमर्शों ने साहित्य जगत में विचारों का सैलाब ला दिया। जिससे मानव समाज के जीवन में बदलते परिवेश के अनुसार आते उनके मानसिक विकास का परिचय भी मिलने लगा।

अपनी उपादेयता के बल पर आधुनिक विमर्श अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए सक्रिय है। नवोन्मेषी विचारों से प्रभावित होकर साहित्य ने जो रूप लिया, वह निस्संदेह अनिवार्य था। आधुनिक विचार यों ही नहीं पैदा होते। वे समय और परिवेश के गर्भ में वर्षों की प्रतीक्षा का फल होते हैं। जब भी समाज और साहित्य वैचारिक कुंठा से ग्रस्त होते हैं, आधुनिक विचारों की आवश्यक होती है। सजग साहित्यकार एवं नागरिकों की पहल से आधुनिक विचार अवश्य ही प्रस्फुटित हो जाते हैं। आधुनिक युग अपने पूर्ववर्ती युगों से नितान्त भिन्न है। नए विमर्शों से इस युग में भौतिकता एवं बौद्धिकता का सामावेश हुआ। यथार्थ और उपयुक्तिता का प्रबल समर्थन हुआ। आधुनिकता का एक अर्थ ही व्यक्ति एवं समाज को विकासशील दर्शन प्रदान करना है। इस दृष्टि से हिंदी साहित्य का आधुनिक विमर्श सफल है। आधुनिक विमर्श की उपादेयता यथोचित है, जिसने साहित्य का नवीनीकरण कर समाज में नवजीवन का अंकुर प्रस्फुटित किया।

### संदर्भ ग्रंथ सूची

- 1) डॉ. नगेंद्र- साहित्य का समाजशास्त्र – पृ.सं.37
- 2) डॉ. बचन सिंह – हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास – पृ. सं. 302
- 3) सं. डॉ. नगेंद्र- हिंदी साहित्य का इतिहास – पृ. सं. 711
- 4) त्रिभुवन सिंह- आधुनिक साहित्यिक निबंध – पृ.सं. 25

## हे अधोहस्ताक्षरी

डॉ. नीरज कुमार द्विवेदी

असिस्टेंट प्रोफेसर,

हिंदी विभाग, दयानंद वैदिक कॉलेज, उरई (जालौन)

सम्पर्क 7905531417,

E-mail - [neerajdwivedi71@gmail.com](mailto:neerajdwivedi71@gmail.com)

सच बताना  
यह तुम्हारी योग्यता है  
या कि कुंठा  
तुम्हारा कोई भी अधीनस्थ  
जब तुम से आगे बढ़ने का  
आभास देता है तो  
तुम लग जाते हो  
उसके मार्ग में व्यवधान खड़े करने के  
और इन व्यवधानों को कायदे-कानूनों का  
नैतिकता का  
सामाजिक मर्यादा का  
जामा पहनाकर  
उसके हितेषी बनने का पूरा प्रयास  
करते हो।  
और मेरी आंखें  
तब फटी रह जाती हैं  
जब मैं सुनता हूँ आपकी तारीफ  
उस निरीह की जुबानी, जो  
अपनी असफलताओं के एवरेस्ट से  
खड़े होकर निःश्वास करता है  
गाता है तुम्हारे गुण  
चारण-भाटों की तरह  
नहीं दिखती किसी को  
उसके अंदर की उमड़ती-घुमड़ती  
काली-पीली-सफेद धुआंती रेखाएं

नहीं दिखते  
सूखे आंसुओं के दाग-धब्बे  
पर क्या फर्क पड़ता है इन सबसे ।

साहित्याकारा



## तकरार न कर

समृद्धि संजय सुर्वे

चिंचवड, पुणे 33

7420828184

हो डगर ऊँची-नीची  
ना हो कोई हमसफर  
अकेला हो सफर तो  
रास्ता बदलकर चल  
तकरार न कर  
चलता चल.....

मायूस न हो देखकर  
डूबता सूरज क्षितिज पर  
आनेवाली सुबह पर  
ऐतबार करता चल  
तकरार न कर  
चलता चल.....

है ताकत तेरी बाजुओं में  
लडने की शक्ति हो मन में  
अपनी ही हार पर बावरे  
विजय प्राप्त करता चल  
तकरार न कर  
चलता चल.....

जो भाग्य में है लिखा  
किसी और ने ना देखा  
अपने करुणामय पर  
विश्वास तू रखता चल  
तकरार न कर  
चलता चल.....

तकरार न कर  
चलता चल.....

## जीवन की विडंबना

राजेंद्र यादव 'फरीदाबादी'

जीवन की विडंबना क्या होगी?  
जब जीवन ही एक विडंबना है।  
अलंकारों की श्रृंगारिकता क्या होगी?  
जब अलंकार ही एक श्रृंगार है।

जीवन की विषमता क्या होगी?  
जब जीवन ही एक विषमता है।  
जीवन की विडंबना क्या होगी?  
जब जीवन ही एक विडंबना है।

जीवन की विषम और सम परिस्थितियों में क्या कोई स्थिर रहता है?

जीवन की हालों से चंचल हो जीवन बहता रहता है।

विषम स्थितियों में भी सदैव विषम ना रहता है।

फिर क्यों मानव तलवों को चाटा करते हैं।

लघु भय से दीर्घ संकट का निःस्वास लिया करते हैं।

जीवन की विषमता क्या होगी?  
जब जीवन ही एक विषमता है।  
जीवन की विडंबना क्या होगी?  
जब जीवन ही एक विडंबना है।

जीवन से परिचित होकर भी,  
अपरिचित-सा व्यवहार करे।  
सुबह साम और आठो याम,  
राम रहीम का नाम जपे।

मन्दिर मस्जिद जाकर भी, चिंता भय में रहता है।

जीवन की चिंता क्या होगी?  
जब जीवन की भी चिंता है।  
जीवन की विडंबना क्या होगी?  
जब जीवन ही एक विडंबना है।

## एक ख्वाब किनारों पर

अंकिता राय

इलाहाबाद विश्वविद्यालय

Mobile no 9839805235

Email: [iamankitacool235@gmail.com](mailto:iamankitacool235@gmail.com)

चांद की चमचमाती चांदनी लिए  
 ये लहरों की बस्ती, है हवा कुछ हसीं और खुशबुओं में मस्ती,  
 जिंदगी की कस्ती यू गोते खाए  
 जब भी मन इस कल कल स्वर में समाए,  
 ये हसीं चांदनी इन लहरों पर ऐसे हर्षाए  
 जैसे बच्चे को मां अपनी आंचल में सुलाए,  
 सुकून से बैठे मैं और मेरे ख्वाब इन किनारों पर  
 ये समंदर की नगरी मुझे खूब भाए,  
 पर डर लगता है, इन लहरों से प्यार ना हो जाए  
 ये आवाज दे मुझे और मेरे कदम रुक न पाए,  
 समंदर की गोद में जब भी तू समाए  
 किनारों की तरह तुझे मेरी भी याद आए,  
 तुझे देख कर यू मन आशाओं से भर जाए  
 जब तू फिर हिलोरे लेकर किनारों पर आए,  
 बैठी रहूँ कुछ उम्मीद लेकर इन किनारों पर  
 तू फिर आए तेरी मस्तियों से मुझे भिगाए,  
 ये तेरा मेरा रिश्ता कुछ यू गहरा हो जाए  
 मैं तेरी याद बन जाऊ और तू मेरे दिल में समाए।